सार संसार

ईरानी साहित्य विशेषांक

जुलाई-सितम्बर, 2018

वर्ष : 23 पूर्णांक : 91 जुलाई-सितम्बर, 2018 अंक : 3

मुख्य सम्पादक
अमृत मेहता

अतिथि सम्पादक और अनुवादक
नासिरा शर्मा

हमारी वेबसाइट
www. saarsansaar.com
Email : saarsansaar@gmail.com

मूल्य :
एक प्रति : 20 ह्रपये
वार्षिक : 80 ह्रपये

Subscription
Single Copy : Rs. 20.00
Annual : Rs.: 80.00

प्रकाशक	:	**सार संसार** जे-3/सी, लाजपत नगर III नई दिल्ली-110024
मुख्य सम्पादक	:	अमृत मेहता
प्रकाशन अवधि	:	त्रैमासिक
शब्द संयोजन	:	देवेन्द्र कुमार शर्मा
मुद्रक	:	पूजा ऑफसेट प्रिंटर्स
मूल्य	:	20 रुपये : (एक प्रति)
	:	80 रुपये (वार्षिक)
मुख पृष्ठ	:	**जलाल अल-अहमद** **नासिरा शर्मा**

Published by
Amrit Mehta
at
J-3/C, Lajpat Nagar–III
New Delhi–110024

पाठकों से अनुरोध है कि पत्रिका के अंकों पर अपनी प्रतिक्रियाएँ भेजें :
देवेन्द्र कुमार शर्मा, डी-580, गली नं. 4, अशोक नगर, शाहदरा, दिल्ली-110093
या
saarsansaar@gmail.com

सम्पादक की कलम से...

फ़ारसी भाषा साहित्य का जितना अनुवाद यूरोपियन देशों में हुआ है वैसा अध्ययन व शोधकार्य वर्तमान समय में भारतवर्ष में नहीं हुआ, जबकि हम सभ्यता एवं संस्कृति के देखते एक चने की दो दाल हैं। हमारे प्राचीन रिश्ते साहित्य और व्यापार को लेकर ज़्यादा समीप थे, बतौर मिसाल अनुशेरवान-ए-आदिल ने अपने वज़ीर बुर्जवा तबीब को भारत भेजा, ताकि वह अमृत या संजीवनी बूटी ला सके। भारत आकर बुर्जवा को पता चला कि वह अमृत तो पंचतंत्र पुस्तक है। उसने संस्कृत सीखी और अरबी भाषा में उसका अनुवाद किया, फिर अरबी से फारसी में कभी गद्य में तो कभी पद्य में हर शासनकाल में बादशाह करवाते रहे थे। मैंने अपने पाँच वर्ष के एम.ए. फारसी में पंचतंत्र की कहानियों को फारसी भाषा के पाठ्यक्रम में पढ़ा था। इसी तरह भारतीय भाषा की ढेरों पुस्तकें अनुवाद हुईं। फिर हमारा नाता धीरे-धीरे केवल व्यापार तक का सीमित रह गया।

मुझे ख़ुशी है कि मैंने अनजाने में एक ऐसे दरवाज़े को अनुवाद द्वारा खोल दिया जो कई शताब्दियों से बन्द पड़ा था। भारत में क्लासिक फ़ारसी की उपस्थिति बनी रही, परन्तु बदलते ईरान की साहित्यिक गतिविधियाँ इस बीच खामोश रहीं। 1970 में जे.एन.यू. में मार्डन फारसी विभाग स्कूल ऑफ लैंग्वेजेज़ में खुला और पहली डिग्री एम.ए. इन माडर्न फ़ारसी का हमारा बैच रहा। हमारे पाठ्यक्रम में अनुवाद का भी एक कोर्स रखा गया था, परन्तु वह अखबारी यानी सियासी खबरों पर आधारित था। मैंने उन्हीं दिनों छोटी-छोटी फ़ारसी कहानियों का अनुवाद शुरू कर दिया था जो छपने भी लगी थीं। यह सारी कहानियाँ शाहनामा के रुस्तम पहलवान की थीं।

सार-संसार के इस संग्रह की सभी कहानियाँ महत्त्वपूर्ण फ़ारसी लेखकों की उत्कृष्ट कहानियाँ हैं जो मैने अनुवाद की हैं। यूनेस्को फ़ारसी क्लासिक साहित्य, जैसे शाहनामा, फिरदौसी, मौलाना रूमी पर विशेष रूप से अन्तर्राष्ट्रीय उत्सव वर्ष मनाने की घोषणा करता रहा है और नए लेखकों को सम्मानित करता है। फिलहाल भारत-ईरान सम्बन्ध हर क्षेत्र में घनिष्ठ बन रहे हैं।

सार-संसार पत्रिका से जुड़ना मेरे लिए सम्मान की बात है। सम्पादक अमृत मेहता जी जिस लगन से विभिन्न भाषाओं से सीधे किए गए अनुवादों को अपनी पत्रिका में किसी डेल्टा की संरचना की तरह पेश करते हैं जिसका एक मात्र सन्देश है मानवीय सोच और सम्वेदनाओं को विश्व स्तर पर एक-दूसरे से परिचय करा के एकता में बाँधना। खास कर तब जब अनेक तरह की भ्रान्तियाँ अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर फैलाकर राजनीतिज्ञ अपना मक़सद पूरा कर लेते हैं। साहित्य, अनुवाद द्वारा दूर बैठे इनसानों की ख़बर हमको विचार एवं अहसास के धरातल पर मिलाती है यह बड़ा काम है। आशा है आपको ये कहानियाँ ईरानी जनमानस के समीप ले जाएँगी। मेरा यह प्रयास तभी सफल होगा जब ये कहानियाँ आपको पसन्द आएँगी।

—नासिरा शर्मा

चिट्ठी आई है

Ja. Amrit, wir brauchen Dich **—Prof. Gesa Singer, Göttingen**
हाँ, अमृत, हमें तुम्हारी ज़रूरत है। **—गेज़ा ज़िन्गर, ग्योत्तिंगन**

'सार संसार' के अंक इन दिनों डाक विभाग की कृपा से नियमित रूप से मिल रहे हैं। अप्रैल-जून का अंक भी मिल गया है। आपका आभार कि आप विदेशी लेखकों की रचनाओं से हमें परिचित करवा रहे हैं। 'सार संसार' में अनुवाद का स्तर बहुत अच्छा है। प्रतीत होता है जैसे अनुवाद नहीं मूल रचना ही पढ़ रहे हों। आप अलग ही तरह का कार्य कर रहे हैं जिसके बारे में किसी ने शायद सोचा भी नहीं होगा। आपके इस कार्य में उत्तरोत्तर निखार आता जाए यह कामना करता हूँ। जनवरी-मार्च 2018 के अंक में प्रकाशित आपका यात्रा वृतान्त मैं कई बार पढ़ गया। सहज सरल भाषा में लिखा यह वृतान्त आँखों के सामने जीवन्त दृष्य उपस्थित कर देता है। यात्रा संस्मरणों में मेरी विशेष रुचि है। मेरे अपने यात्रा संस्मरण 'धुंध और आकार' नाम से पुस्तक रूप में प्रकाशित हुए हैं। आप यह पत्रिका जिस लगन एवं श्रम से प्रकाशित कर रहे है उसके लिए हिन्दी साहित्य जगत आपका सदैव आभारी रहेगा।

—राजेन्द्र नागदेव, भोपाल

उपरोक्त अंक मिल गया था। धन्यवाद। सोचा था दिल्ली आकर आपसे मिलूँगा, पर आना सम्भव न हो सका।

बालकवि बैरागी जी नहीं रहे, उदारवादी साहित्य के लिये बहुत बड़ी क्षति है यह। मैं उनकी रचनाधर्मिता से प्रभावित था, तभी बहुत बरस पहले मनासा में (जहाँ मेरी रिश्तेदारी थी) उनसे जब भी मिलने गया, दर्शन न हो सके। फिर तीन वर्ष पूर्व नीमच में उनके घर गया तब वह मनासा गये हुए थे। सार संसार में प्रकाशित उनका पत्र व कविता उल्लेखनीय हैं।

उनकी स्मृति को नमन।...प्रस्तुत अंक में रूथ कल्यूगर की जर्मन कथा 'टेरेजीयनश्टाट्ट' नाजियों द्वारा संचालित एक विशाल यातना शिविर में ले जाती है जहाँ गम्भीर रोगों से पीड़ित हज़ारों बच्चे हैं, दो-दो सोने वाले तंग जगह में बिलबिलाते हज़ारों यहूदी बन्दी हैं, उन्हें यातनाएँ देने वाले रोंगटे खड़े करने वाले विवरण हैं। पढ़ते हुए मुझे विभाजन उपरान्त के शरणार्थियों के शिविर याद हो आए जो घाटों की तरह थे पर यातनाएँ नहीं देते थे। ऐसे ही चेक कथा में एक यहूदी

परिवार के गाँव की कॉर्प मछलियों के प्रति अनुराग, लेकिन नाज़ी फ़ौजियों द्वारा उनका तिरस्कार, और दोनों का ईसाई होने के बावजूद, नस्ली वैमनस्य, बहुत कुछ सोचने पर विवश करता है। भारत में ऐसी परिस्थितियाँ कभी न हों, यही दुआ है।

अफ़ग़ान कथा पतंगबाज़ी ने भी ध्यान खींचा। याकूब और हमीद दो किशोर पड़ोसी पतंगबाजों की रोचक कथा है (बीच मे काली आँखों वाली लड़की की वजह से) अपना बचपन याद आया यह कहानी पढ़ कर। कुशल सम्पादन के लिये बधाई।

—अमृतलाल मदान, कैथल

आपकी भेजी पत्रिका 'सार संसार' मुझे बराबर मिल रही है। धन्यवाद। अभी अप्रैल-जून 2018 अंक प्राप्त हुआ। चूँकि मेरा काम भी विश्व साहित्य से जुड़ा है अत: आपकी पत्रिका पढ़ना अच्छा लगता है। खासकर गुंटर ग्रास की जीवनी बहुत अच्छी बन पड़ी है। नासिरा शर्मा की अनुवादित कहानी बड़ी रोचक है। आप हिन्दी जगत को विश्व साहित्य से परिचित करा कर एक महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं। शुभकामनाओं सहित,

—विजय शर्मा, जमशेदपुर

'सार संसार' के सभी अंक मिल रहे हैं। मैं इसके लिए किन शब्दों में शुक्रिया अदा करूँ, समझ नहीं पा रहा हूँ। आप विश्व साहित्य से हिंदी जगत को जिस शिद्दत से परिचित करा रहे हैं, वह अभिनन्दनीय है। अप्रैल-जून 2018 के अंक में रूथ क्ल्यूगर की कहानी ने बहुत उद्वेलित किया। अगर सम्भव हो तो किसी अंक में ब्लैक लिटरेचर भी देने का उपक्रम करें।

आपका,
—कँवल भारती

श्री बैरागी के सम्बन्ध में सूचना देते आपके नए अंक के लिए धन्यवाद। आपके एक अंक में मिली सूचना की वजह से मुझे और और मेरी पत्नी नीरजा द्विवेदी को शातो दे लाविनी जाने का अवसर मिला था। उससे पहले मैं लेखकघरों के बारे में कुछ नहीं जानता था।

महेश चन्द्र द्विवेदी

मुख्य सम्पादक
अमृत मेहता
जे-3/सी
लाजपत नगर-III
नई दिल्ली—110024

सम्पादक मंडल
रिज़वानुर रहमान
अरबी एवं अफ्रीकी अध्ययन केन्द्र
जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी,
नई दिल्ली-110067

देवेन्द्र सिंह रावत
स्कूल ऑफ़ लैंग्वेजस
जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी,
नई दिल्ली/110067

डागमार मारकोवा
चार्ल्स यूनिवर्सिटी, प्राग

बाबली मैत्र सराफ़
इन्द्रप्रस्थ महिला कॉलेज,
दिल्ली यूनिवर्सिटी,
दिल्ली-110006

प्रशान्त पांडे
271, साबरमती होस्टल,
जवाहरलाल नेहरू यूनिवर्सिटी,
नई दिल्ली—110067

अनुक्रम

चचा ने कहा था	9
लाल ताल	11
ख़ूनी ताने-बाने	16
आदम की औलाद	24
हातिम और लैला	31
अनाम	43
व्यथा का असीमित सागर	49
किसे सलाम करूँ	54

चचा ने कहा था

अब्बास हकीम

संगतराश जवान था। सब-कुछ होने के बाद भी वह तन्हा था और रात इस तन्हाई को चौगुना कर देती थी। सुबह उठकर वह झील के किनारे घूमने जाता और पानी में अपनी शक्ल देखता। एक रात तन्हाई से घबराया हुआ सोचने लगा कि कल वह चश्मे के पानी से बेताल को ले आएगा। सोचकर वह ख़ुश हुआ। सुबह मुस्कराहट का जाल पानी में फेंका तो बेताल फँस गया। मगर जैसे ही उसने उसे पकड़ना चाहा, पानी की लहरों ने उससे उसे छीन लिया। दुखी हो उसने हथौड़ी उठाई और पत्थर से एक सुन्दरी रच डाली, लेकिन वह बेजान और ठंडी थी। यह देखकर वह क्रोधित हो उठा। फिर भी उसने हिम्मत न हारी। छेनी-हथौड़ी फेंक प्रेम द्वारा उस पत्थर की मूर्ति में जान डालने का इरादा किया। उसे गले से लगाया, उसकी कमर में अपना हाथ डाला, उसके पथरीले सीने में गर्मी पहुँचाकर अपनी आँखों से उसकी आँखों में ज़िन्दगी लाया। फिर वे दोनों हाथों में हाथ डाले इधर से उधर जंगल में घूमने लगे।

एक दिन मूर्ति ने संगतराश से पूछा, ''मुझे प्यार करते हो?''

''मैं तुम्हें पूजता हूँ।'' यह प्रश्न मूर्ति ने कई बार पूछा। हर बार वही उत्तर मिला। उसने संगतराश की बात सुनकर कहा, ''मुझे पूजना नहीं, प्यार चाहिए।''

संगतराश ने कहा, ''मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।'' बर्फ़ पिघल गई। चिड़ियाँ चहचहाने लगी। बुलबुलें गाने लगीं और वसन्त ऋतु आ गई।

संगतराश ने मूर्ति से पूछा, ''मुझे प्यार करती हो?''

उसने उत्तर दिया, ''मैं तुम्हें प्यार करती हूँ, मगर आशिक़ नहीं हूँ।''

यह सुनते ही संगतराश बूढ़ा हो गया। दुखी हो उसने चश्मे के पानी में अपने को देखा तो डर गया। उसकी नाउम्मीदी को देखकर मूर्ति ने उसे दिलासा दिया और फिर पूछा, ''उन दिनों जब अकेले रहते थे तो क्या करते थे?''

''चश्मे के किनारे जाता था, उसके पानी में अपने को देखता था।''

''तो फिर तुमने मुझे क्यों बनाया?''

''तुम भी तो पानी में हो।''

''मैं पानी में नहीं, तुम्हारे पास हूँ।''

''तुम पानी में झाँको।'' संगतराश की बात सुनकर उसने पानी में झाँका और अपने को न पहचाना। थोड़ी देर बाद वह जाने लगी। उसको यों जाता देखकर संगतराश व्याकुल-सा आगे बढ़ा, मगर मूर्ति बोली, ''अगर मेरे समीप आए तो मैं तुम्हें मार डालूँगी, क्यों तुमने दूसरी पर नज़र डाली?

यह सुनते ही संगतराश रोने लगा और बोला, ''सिर्फ़ तुम मेरी हो, मगर मैं क्या करूँ, जो तुम अपने को नहीं पहचानती हो। आओ, अपने को फिर से देखो। शायद ख़ुद को पहचान लो।''

''मैं जलन महसूस करती हूँ। दोबारा उसे नहीं देख सकती। उससे बेज़ार हूँ और तुमसे भी, जो उसे घूरते रहते हो। मैं तुम दोनों से बेज़ार हो गई हूँ।''

संगतराश ने रो कर कहा, ''मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता।''

मूर्ति ने हँसकर कहा, ''और मैं तुम्हारे साथ नहीं रह सकती।'' और दूर मैदान में भाग गई। संगतराश थका-सा ठगा रह गया। वह उसके पीछे न भाग सका... चश्मे के किनारे बैठ गया और फिर कभी न उठा।

चचा ने कहा : उस आदमी ने ग़लती की। उन सारी बातों की जगह अगर वह उसका चुम्बन ले लेता तो शायद बात इतनी अधिक आगे न बढ़ती।

लाल ताल

दारिवश कारगर

डूबते सूरज की किरणें ऊपर पहाड़ पर ख़ून के आँसू रो रही थीं। नीचे दो आदमी एक ट्रक से धरती पर कूदे और दूसरे ही पल बड़ी फुर्ती से खड़े हो गए। उनके चेहरे चारखाने के लम्बे-चौड़े रूमाल से इस तरह बँधे हुए थे कि उनमें से केवल उनकी आँखें ही झाँक रही थीं। भावहीन और सपाट, जिनसे कुछ भी पढ़ पाना कठिन था। उनमें से एक ने हाथ आगे बढ़ाया, ताकि माहरुख़सार को ट्रक की ऊँचाई से नीचे उतरने में आसानी हो। माहरुख़सार ने घृणा से उस आदमी को देखा, फिर मन-ही-मन बड़बड़ाती ट्रक की दीवार के सहारे नीचे उतर आई।

माहरुख़सार के नीचे उतरते ही वे दोनों मर्द सावधान होकर ख़ामोशी से उसके दोनों ओर खड़े हो गए। अब वे माहरुख़सार को मैदान की ओर लेकर चलने लगे।

दरहक़ीक़त यह मैदान शहर के ग़रीब इलाक़े की क़ुर्बानगाह थी। यहाँ पर क़स्साब भेड़ें लाता था। भेड़ें गर्दन झुकाए क़स्साब के पीछे-पीछे चलती यहाँ तक आती थीं। यह सुनसान मैदान इसी काम के लिए इस्तेमाल किया जाता था... और इसीलिए वातावरण में एक ज़हरीली गंध फैली हुई थी।

माहरुख़सार पहली ही नज़र में सब-कुछ समझ गई थी, मगर वह भेड़ तो न थी, जो सिर झुकाए ख़ामोशी से बिना कुछ समझे-बूझे अपनी क़त्लगाह तक अपने ही पैरों से चलती चली जाए। एक शोला-सा चमका। उसने अपने साथ चलते हुए उन दोनों आदमियों पर निगाह डाली, फिर बिजली की सी तेज़ी से अपना भरपूर हाथ उनमें से एक के सीने के बाईं ओर मारा तथा भागती हुई दूसरी तरफ़ दौड़ने लगी। अचानक हुए हमले के लिए दोनों तैयार न थे। ठगे-से एक दूसरे को देखने लगे, मगर दूसरे ही पल जैसे वे होश में आ गए, ''ऐ! रुको, ठहरो!'' कहते हुए उसके पीछे दौड़ पड़े। ड्राइवर आश्चर्यचकित सा दो पल सामने देखता रहा, फिर तेज़ी से इंजन चालू कर गोलाई से घूमते हुए ठीक माहरुख़सार के सामने पहुँचकर उसने ब्रेक लगाई। माहरुख़सार ने चुँधियाई आँखों से ट्रक के शीशे को देखा। वहशतज़दा चमकीली आँखें पूरी खुलकर फड़फड़ाईं और वहीं जम गईं। पीछे से दौड़ते हुए वे दोनों भी पहुँच गए और झपटकर माहरुख़सार के हाथ पीछे से पकड़

लिए।

तभी सहसा उसे काकउमर की आँखें याद आ गईं। लगा, मन को मुट्ठी में पकड़कर किसी ने निचोड़ दिया है। दर्द की बेशुमार टीसें उठ-उठकर उसे व्याकुल करने लगीं। कानों में उसकी आवाज़ गूँजने लगी। ये बातें कुछ दिन पहले ही तो उनके बीच हुई थीं....

''काकउमर, तुम्हें बेटा ही क्यों पसन्द है?''

''कुर्दिस्तान के लिए...''

''यानी...''

''ताकि कुर्द ज़्यादा हों...''

काकउमर की आवाज़ में भरपूर इच्छा का ऐसा गौरवपूर्ण रंग था कि माहरुख़सार की सारी देह उसी रंग में भीगी याद से झनझना उठी! काकउमर की आवाज़ की गर्मी, उसका ग़ुरूर, उसकी धमनियों में बहने लगा। उसकी प्रेम से भीगी आँखों का उतावलापन उसके होंठों में फँसकर रह गया... कि काश! काकउमर की यह इच्छा उनके तन से जन्म ले।

''उनका जन्म उनकी मौत की संख्या से अधिक हो... पीशमर्ग (कुर्दिस्तान के एक गुट का नाम है। इनका विश्वास है कि देश के मरने से पहले वे कुर्बान होंगे। इसीलिए उन्होंने अपने गुट का नाम पीश अर्थात् पहले, मर्ग अर्थात् मौत रखा है।) ज़्यादा होंगे माहरुख़सार! इतने ज़्यादा... इतने ज़्यादा हों कि फिर हम पर अपनी मर्ज़ी से कोई भी ज़ोर न चला पाए।'' काकउमर की आँखें आसपास फैली नंगी उजाड़ धरती पर फिसलने लगीं। विचारों ने उसके मस्तिष्क को एक नई दिशा दी। इस बार माहरुख़सार के कानों में जो आवाज़ टकराई, वह पहले से कहीं अधिक जिजीविषा और उत्साह से भरी थी।

''इन्हीं लोगों के हाथों... इन्हीं अपने कुर्दों के हाथों... अपने पीशमर्गों का हक़ हम लेंगे... उन्हीं के हाथों से, यह सूखी धरती गेहूँ की बालियों से भर उठेगी... उन्हीं का पसीना हमें अनाज देगा... और उन्हीं के हाथों देश की भूख मिटेगी।''

पीछे से भारी हाथों ने माहरुख़सार को आगे धक्का दिया। काकउमर की गूँजती आवाज़ माहरुख़सार के कानों से ग़ायब हुई और फिर उसके साथ क़दम मिलाकर चलने लगी।

''माहरुख़सार! मान लो, अगर मैं एक वक़्त न रहा...''

''नहीं-नहीं, काकउमर, ऐसा मत कहो!''

काकउमर के होंठों पर उदास मुस्कान खेल रही थी। ग़म में डूबी उसकी आँखें माहरुख़सार के चेहरे को जी भर कर देखना चाहती थीं। एकाएक काकउमर के कंधे

दुख के बोझ से झुक गए, ''शायद ऐसा हो जाए माहरुख़सार.. समझ लो कि मैं नहीं रहा तो तुम हाथ-पर-हाथ धरकर न बैठना! यह बन्दूक है। इसे उठाकर सीधे वहाँ.... उस पहाड़ी की ओर गोली दाग़ देना... वहाँ मेरे भाई हैं, मेरे दोस्त हैं... वे जमा हो जाएँगे, तुम्हारी मदद करेंगे, वे तुम्हारा पूरा ख़याल रखेंगे... तुम्हें अकेला नहीं छोड़ेंगे।''

माहरुख़सार की आँखों में सावन-भादों की झड़ी लग गई। वह बार-बार आँखे पोंछती, मगर लम्बे-लम्बे आँसू आँखों से ढलक-ढलककर बराबर गालों पर बह रहे थे। उसका मन चाह रहा था कि दुश्मनों की नज़रों से दूर, काकउमर को खोने से पहले, इस दर्द को जी भरकर देख ले।

वे मैदान के बीच में पहुँच गए थे। एक आदमी जो आगे दौड़ा और इन दोनों के सामने आकर खड़ा हो गया। दूसरे ने माहरुख़सार के हाथों को पीछे करके उन्हें कसकर बाँध दिया। माहरुख़सार ने देह की सारी ताकत लगाकर हाथ को छुड़ाना चाहा। मगर हाथ बिलकुल नहीं हिले, आज़ाद होना तो बहुत मुश्किल था। असहज ही उसका दिल धड़कने लगा। शरीर काँपा और मस्तिष्क में सवाल उभरे—''मैं कौन-सी हूँ?'' उन दोनों आदमियों से ध्यान हटाकर वह सोचने लगी.. ''मैं कौन-सी कुर्द हूँ, जो यहाँ लाई गई हूँ? मैं मरने वालों की संख्या में कौन-सा नम्बर हूँगी?'' उसकी आँखें धरती पर टिक गईं। उसके पैरों के पास की ज़मीन की मिट्टी बिखरी हुई थी... उसके मस्तिष्क में दूसरा विचार कौंधा—'माहरुख़सार, अपने आपसे पूछो कि तुम कौन-सी पीशमर्ग हो? शायद आज सुबह, शायद दोपहर को या दोपहर से पहले, हो सकता है घंटे भर पहले ही कोई कुर्द यहाँ मारा गया हो! कोई क्या जाने!'' अभिमान भरी अर्थपूर्ण मुस्कान उसके होंठों पर उभरी और मुख पर फैल गई। अकस्मात् उसकी आँखों में चमक-सी आई, फिर स्वयं से बोली—पहली हूँ या दूसरी या सौवीं, क्या फ़र्क़ पड़ता है! लेकिन इतना जानती हूँ कि जिस तरह से पहली नहीं हूँ निश्चित है कि आख़िरी भी नहीं हूँ।

इस विश्वास के बावजूद एक इच्छा उभरी—काश, मैं मरने वालों में आख़िरी होती! काश, मैं आख़िरी बलि होती। मेरे इस बलिदान के बाद कुर्दिस्तान आज़ाद हो जाता। काश...।

एक आगे बढ़ा। माहरुख़सार की सोच का सिलसिला बिखर गया। अपनी जेब से काला रूमाल निकालकर वह माहरुख़सार की आँखों पर बाँधना चाहता था। यह देखकर माहरुख़सार ने बचा-खुचा भय भी मन से दूर भगा दिया और कड़कती आवाज़ से उसे ऐसा करने से मना किया, ''नहीं, मेरी आँखों को मत छूना!'' फिर होंठो के बीच से छलकती हँसी के साथ बोली, ''ठहरो! मुझे आख़िरी बार जी

भरकर कुर्दिस्तान को देख लेने दो! इन आँखों से अपनी धरती का नज़ारा तो कर लेने दो!''

''ठीक है, छोड़ दो इसे, पट्टी मत बाँधो।'' ट्रक से आवाज़ आई...।

मुस्कान की पर्त, संतोष का रंग माहरुख़सार के मुख पर गहरा होता गया। उसका लावण्य निखरने लगा।

सहसा पीछे से किसी के चीखते स्वर ने माहरुख़सार का ध्यान अपनी ओर खींचा।

''जोखे तैयार हो न!''

वह सात लोग इस आवाज़ के साथ ही बिजली की-सी तेज़ी के साथ घुटनों के बल ज़मीन पर बैठ गए और बन्दूक़ की नली माहरुख़सार की ओर करके निशाना साधने लगे।

माहरुख़सार ने अपनी तरफ़ लगी उन भयावह आँखों में कुछ ढूँढ़ना चाहा। मगर वहाँ कोई कुछ भी न था, जिसे देखती या पढ़ती। सब-कुछ सपाट देखकर उसे अफ़सोस हुआ। माहरुख़सार की ज़िन्दगी का यह सबसे बड़ा आख़िरी दुख था। उनकी ओर से उसने नज़रें हटाईं। ज़बान निकालकर होंठों को तर किया। उनकी उँगलियाँ ट्रिगर पर टिकी हुक्म की मुन्तज़िर थीं। माहरुख़ार ने लम्बी साँसें खींचीं। ख़ून धमनियों से दुगने वेग से बहने लगा था। अपनी सारी तमन्नाओं को उसने बलपूर्वक जमा किया और पूरी ताकत से चिल्लाई—'कुर्दिस्तान या मौत!''

माहरुख़सार की चीख़ मैदान के ज़र्रे-ज़र्रे में पहुँची। बरसों पुराने ज़ख्म को फिर से हरा देखकर वे व्याकुल हो अपने में बल खाकर रह गए। पेड़ जो सारा माजरा समझ चुके थे, इस आवाज़ को उन्होंने पूरे वजूद के साथ महसूस किया। मीलों तक सूखी मिट्टी, चश्मों, सूखे खेतों, कँटीली झाड़ियों और पर्वत की शृंखलाओं ने एक-दूसरे के कान में फुसफुसाकर दुखभरी ख़बर दी। उनके लिए माहरुख़सार की आवाज़ नई नहीं थीं। बहुत पुरानी थी, इतनी पुरानी जितना पुराना कुर्दिस्तान का इतिहास था। इसी तरह की अनेक आवाज़ें इस बार की तरह पहले हज़ारों बार कुर्दिस्तान के मैदानों और पहाड़ों का दिल हिला चुकी थीं।

माहरुख़सार की आवाज़ नारा थी, दहाड़ थी, फ़रियाद थी—और ऐसी तीव्र गुर्राहट थी, जिसने उन सातों जोखों के पैरों में झुरझुरी ला दी थी। उनके हाथ थर्रा गए थे। जोखों के सरदार का भी यही हालत थी, मानो हुक्म देने के लिए शब्द मुँह में ही जम गए। माहरुख़सार द्वारा कहे गए शब्दों को वह मन-ही-मन में दोहराने लगा... ''कुर्दिस्तान या मौत... कुर्दिस्तान या मौत.. या मौत? यानी... यानी क्या....?''

फिर वह शब्दों के जाल में फँस गया। मस्तिष्क में खिंचाव बढ़ा। कई रंग-बिरंगे प्रश्न उभरे। उसका मन चाहा कि इन शब्दों का अर्थ समझे। इसी उत्सुकतावश उसके मन-मस्तिष्क में व्याकुलता-सी उभरी।

'यानी क्या... ?'

उसका पूरा व्यक्तित्व प्रश्न बन गया।

'क्या होगा जो ऐसा कहा इसने ?'

उसकी दृष्टि जोखों पर पड़ी और थोड़ी देर के लिए वह सब-कुछ भूल गया। वह ख़ुद तो जानती है... चलूँ उसी से पूछ लेता हूँ।.. नहीं बेवक़ूफ़ी मत करो! अगर इन्हीं में से जाकर किसी ने कुछ कह दिया और उन्हें भनक लग गई तो... ज़रा आदमी ख़ुद इसी जगह खड़ा होकर देखे तो... मगर किसलिए ? कुर्दिस्तान ? मौत ?

अब प्रश्न की जगह प्रशंसा ने उसका स्थान ले लिया। अजीब दिलवाली है... इस उम्र में भी क्या हौसला है... निर्भीक। मौत के ख़ौफ़ से निडर ? हो सकता है इसे यक़ीन ही न आ रहा हो कि यह शूट कर दी जाएगी!

माहरुख़सार की शेरनी जैसी मग़रूर आँखें सबके दिल पर असर कर गईं।

...नहीं! यह ज़रूर जानती है... अच्छी तरह से जानती है... माथे पर बल पड़ गए। सब-कुछ बदल गया... नहीं गधे नहीं! अपने को सँभालो उल्लू के पट्ठे!

उसकी निगाह माहरुख़सार की हँसी पर फिसल गई। ठंडा पसीना कमर पर बहने-सा लगा। अनायास ही माहरुख़सार के इस बहादुरी भरे व्यवहार से उसे ईर्ष्या हुई, और जो प्रशंसा का भाव उभरा था, लुप्त हो गया। उसकी जगह द्वेष व क्रोध ने ले ली। अपने-आप पर अब उसने पूरा क़ाबू पा लिया था। सारी चिन्ताओं और विचारों को एक ही पल में मस्तिष्क से झटककर वह ज़ोर से चीखा, ''फायर!''

सात जलते अंगारे, सात पिघले टुकड़े एक साथ निकले जो माहरुख़सार के सीने पर लगे और उसकी देह को छलनी कर गए। गोलियों की ध्वनियों का सन्देश उस सुनसान मैदान में गूँजा और दूसरे ही पल वही मौत का सन्नाटा पहाड़ी मैदान पर फैल गया। बूँद-बूँद ख़ून, माहरुख़सार की मुर्दा देह पर उबलती धमनियों के सूराख़ों से छलकने लगा। उसके लिबास के लम्बे दामन पर लाल ताल बनाता, कुर्दिस्तान की सूखी ज़मीन को भिगोने लगा।

ख़ूनी ताने-बाने

इब्राहीम मोतामद नेजाद

पाँच-छह कच्चे मिट्टी के घर, बेर और सेंदज के कुछ पेड़, एक तन्दूर, उथला चश्मा, छोटी-सी तलैया, यही सब-कुछ उस टेढ़े-मेढ़े मैदान में फैले बीजूम गाँव को आबाद किए हुए थे। दोपहर का समय था। पूरा गाँव जलते सूरज से भाड़ के चने की तरह भुन रहा था। दीवार के साये में बैठा गाय-भेड़ों का झुंड ज़बरदस्ती जुगाली कर रहा था। हाँफते हुए और गर्मी से पगलाये पक्षी पत्तियों की ओट से दुबके बैठे थे। मैदान के एक तरफ़ एक बड़े-से पेड़ की मोटी शाख से खाल उतरी भेड़ टँगी हुई थी, वह पूरी-की-पूरी मक्खियों से अटी हुई थी। अपने हाथ में बड़ा-सा चाक़ू थामे एक बूढ़ा उकड़ूँ बैठा बीच-बीच में हाँक लगाता जा रहा था, 'गोश्त... गोश्त.. भेड़ का।'

चश्मे के किनारे बैठा काला-कलूटा लड़का पत्थर से रगड़-रगड़कर हाथ का मैल छुड़ा रहा था। कुछ ही दूर पर कीचड़ में सना कुत्ता पानी में ग़ोते लगा रहा था। इससे थोड़ी ही दूर पर गुलअफ़रोज़ सिर से पैर तक पसीने में नहाई हुई सामने रखे आटे के पिन्डों को बेल-बेलकर तन्दूर की दीवार पर चिपका रही थी। और बीच-बीच में सिकी हुई रोटियों को एक तरफ़ रखती भी जा रही थी। पाँव की एड़ियाँ तन्दूर की गर्मी से चटख रही थीं। गुलअफ़रोज़ की उम्र यही कोई आठ वर्ष के लगभग होगी। उसके शरीर पर चर्बी नहीं के बराबर थी। हड्डीला चेहरा और सूरज की तपिश से जली रंगत। छोटी-छोटी चमकीली आँखें काले चेहरे पर अजीब तरह से नृत्य करती थीं। उलझे बाल, जिनमें जुएँ-ही-जुएँ थीं, सूती चादर के नीचे ढँके हुए थे। रंग उड़े कपड़े घुटनों के नीचे तक चिथड़ों से लटक रहे थे, जिनसे झाँकती दो पतली सूखी टाँगें खपच्चियों की तरह उसके शरीर को उठाए हुए लग रही थीं।

अकस्मात् दूर से आती घोड़ों की टापों से मैदान गूँज उठा। बूढ़े क़स्साब ने भेड़ की लाश को तेज़ी से उतारा और कंधे पर रख सामने की पतली गली के दहाने में जा घुसा।

'हाय! हाय सिपाही आ गए हैं भागो...!!'

गुलअफ़रोज़ घबराई सी उसी क़स्साब के पीछे भागी। गायें और भेड़ें भी माऽऽऽ माऽऽऽ बाऽऽऽ की आवाज़ों के साथ बिखरने लगीं। क्षणभर में ही मैदान ख़ाली हो गया और तीन घुड़सवार उस मैदान में पहुँच गए।

''अरे-अरे अरे बुज़दिलो! मत डरो, कहाँ है रोड गार्ड, अरे भाई, यह तो मै हूँ... अलीमर्दान ख़ान... आया हूँ, ताकि क़ालीन बुनने वाले बच्चों को ले जाऊँ।''

सुनकर छिपे हुए लोग अपनी जगह से सरकने लगे। जब उन्हें पूरा विश्वास हो गया कि वे सिपाही नहीं हैं तो बाहर निकल मैदान में जमा हो गए।

अलीमर्दान ख़ान छोटे क़द लम्बे हाथ और भारी गालों वाला आदमी था। उसकी आँखों में बहती घृणा और छिपी बदले की तीव्र भावना भाँप जाने के बाद भी लोग उसके हाथ और पैरों का चुम्बन ले रहे थे और कह रहे थे, ''पधारें मालिक!''

''हम तो आपके पैरों की धूल के समान हैं ज़मींदार साहब!''

''ख़ुदा हमारे ऊपर मालिक का साया बनाए रखे।''

''ये हड्डियाँ ये गोश्त तो कहने भर को हमारा है, मगर सम्पूर्ण वजूद आप ही के दम से है!''

हर कोई अपनी औलादों को अलीमर्दान ख़ान के सामने लाता और घिघियाता सा ख़ुशामद करता हाथ-पैर जोड़ रहा था।

अलीमर्दान ख़ान ने गुलअफ़रोज़ के अंग-अंग का यूँ निरीक्षण किया, जैसे क़स्साब बकरे को ख़रीदने से पहले देखता है। और फिर उसके पिता से बोला, 'कितने दिनों के लिए दोगे?'

''जितने दिन के लिए अन्नदाता चाहेंगे।'' वह दोनों हाथ जोड़कर बोला, ''बहुत बढ़िया... बहुत अच्छा... शाबाश! रोज़ का तुमको पाँच रियाल (पैसा) मिलेगा और ऊपर से इसको रोटी-पानी। अब बोलो, इससे ज़्यादा क्या चाहिए।''

''कुछ नहीं मालिक... कुछ नहीं! हमारे लिए वही बहुत है।''

''इसे ले जाऊँगा 'मुद' आबादी की ओर। वह जगह अच्छी है। यह मत भूलना कि पाँच साल के पहले बिना मेरी मर्ज़ी के तुम इसे वापस नहीं बुला सकते। मेरे पास कोई मुफ़्त की रोटियाँ तो हैं नहीं, जो लंगर लुटाऊँ? इसके पेट को भरने के लिए पाँच साल तक पैसा ख़र्च करूँगा और बाद में नतीजा क्या निकेलगा, यही न कि मुफ़्त और सस्ते में इसे गवाँ बैठूँगा।''

अलीमर्दान ख़ान ने दोनों हट्टे-कट्टे मर्दों की तरफ़ इशारा किया और गुर्राया कौन है, जो इस लड़की को घोड़े पर बिठाएगा! वह जो क़द में लम्बा और अधिक तगड़ा था, आगे बढ़ा। गुलअफ़रोज़ उक़ाब के पंजों में फँसी एक चिड़िया की तरह उसके हाथों में आई और उसने उसे एक हाथ में उठाकर ऊँचे घोड़े की पीठ पर बिठा दिया।

अलीमर्दान ख़ान उचककर घोड़े पर सवार हुआ और पलक झपकते ही तीनों घोड़े पहाड़ियों के पीछे ग़ायब हो गए।

गुलअफ़रोज़ कारख़ाने के कोने में बैठी घुटनों पर सर रखे ख़ामोशी से चाँदनी के चकत्ते को टकटकी लगाए देख रही थी, थकी झुँझलाई सी। नींद का कोसों पता न था। माँ की गर्म गोद की याद उसे दुख पहुँचा रही थी। उसी के सामने एक-दूसरे से लिपटी मासूमा व असमत बेख़बर ख़र्राटें भर रही थीं।

पौ फटने ही वाली थी कि कारख़ाने का दरवाज़ा चर्र की आवाज़ के साथ खुला और एक लम्बी-चौड़ी छाया दरवाज़े पर दिखी। वह बड़ा 'उस्ताद' था। भयभीत असमत और मासूमा डरकर सोते से उठ गई। उन पर बड़े उस्ताद की फटकार पड़ी, ''मुर्दा लाशो उठो, जाकर पानी भरो! झाड़ू का काम गुलअफ़रोज़ का है पहले मालिक का घर बुहारना है, बाद में कारख़ाना।''

असमत और मासूमा लाल फूली आँखें लिए घड़े कन्धे पर रख चश्मे की ओर चलीं और गुलअफ़रोज़ दुखी निढाल सी झाड़ू थामे गली के उस पार मालिक के घर के ओर।

जब मासूमा व असमत अपना काम समाप्त करके लौटीं तो गुलअफ़रोज़ भी काम से निबटकर लौट चुकी थी। उसका दिल एक चाय के लिए तड़प रहा था और दिमाग़ बीजूम देहात में घूम रहा था। जैसे ही बड़ा उस्ताद मालिक के घर से बाहर निकला, उदास मुरझाए चेहरे से तीनों लड़कियाँ क़ालीन बुनने का चाक हाथ में लिए उसके सामने बैठ गई। बड़ा उस्ताद हाथ में क़ालीन का नमूना पकड़े उन्हें बुनना सिखाने लगा।

'क्या मौत आ रही है या हाथों में लकवा मार गया है... तेज़ी से हाथ चलाओ... इधर खींचो... इधर।'

लड़कियाँ लम्बी काँपती उँगलियों से विभिन्न रंगों के ऊन में गाँठें लगातीं और फिर उसके सिरे को कूटतीं। बड़ा उस्ताद ध्यान से निरीक्षण करता रहा।

दोपहर को वे तीनों छोटी लड़कियाँ एक बड़े प्याले के चारों तरफ़ बैठी भूख से व्याकुल हो बड़े चाव से भोजन करने में मशग़ूल थीं। जब वह गाढ़ा सब्ज़ीवाला सूप ख़त्म हुआ तो मासूमा ने गली के नुक्कड़ को देखते हुए धीरे से कहा, ''कितना कम था।''

शाम को सूरज डूबने के समय जब उन्होंने हाथों के चाक़ू रख दिए तभी उस्ताद की आवाज़ आई ''उठो, जल्दी से पानी भरो। फिर बाड़े में भी जाना है।''

गुलअफ़रोज़ ने भेड़ों का झुंड जमा कर लिया और उनकी नाँद में ताज़ी घास डालने लगी। असमत और मासूमा बड़बड़ाती हुई बाड़े की बाल्टियों को पानी से भरने लगी।

एकाएक रात में गुलअफ़रोज़ फूट-फूटकर रोने लगी। रोने की आवाज़ से मासूमा और असमत जाग उठीं और वे दोनों भी रोने लगीं। जब गुलअफ़रोज़ जी भरकर रो ली तो असमत से बोली, ''ऐसा नहीं हो सकता है कि किसी तरह यहाँ से निकल चलें?''

''ऐसा नहीं हो सकता है अफ़रोज़! पिछले साल मासूमा भागी थी, कुछ दिनों बाद मालिक उसे ढूँढ़ने पहुँचा। बाप ने इनकार कर दिया। इस पर मालिक ने मासूमा के पिता को गोली मार दी।'' असमत ख़ामोश हो गई और मासूमा ने दुखते दिल के कारण निचला होंठ कसकर दाँतों से दबा लिया। गाँव में सोता पड़ा था। कुत्ते भी एक-दूसरे के आसपास पड़े बड़े आराम से सुस्ता रहे थे। पेड़ की पत्तियाँ तक नहीं हिल रही थीं। चाँद धीरे-धीरे डूब गया था। तीनों लड़कियाँ एक-दूसरे की गर्दन में हाथ डाले सो गई।

बड़ा उस्ताद क्रोधित-सा खड़ा था। क़ालीन बुनने वाली लड़की के चाक़ू को गुलअफ़रोज़ के मुँह पर दे मारा, ''नसीबोंजली, कहाँ हैं तेरे होशोहवास! लाल की जगह पिस्तई रंग लगा रही है? मुफ़्त की रोटी तोड़ती है, काम नहीं करती? बेवकूफ़ है... बेवकूफ!' गुलअफ़रोज़ ने पिस्तई रंग की गाँठ को तेज़ी से खोला और दूसरा रंग लगाया। मगर बड़ा उस्ताद उसी तरह बड़बड़ाता रहा।

एक हरे रंग की लम्बी चमचमाती कार कारख़ाने के समीप आकर रुकी। दो मर्द, एक औरत नीचे उतरे। दोनों मर्द लम्बे कद के थे। होंठों में सिगरेट दबी थी और सफ़ेद नाज़ुक कपड़े की चादर ओढ़े हुए थे, लेकिन बदन से चिपकी जीन्स साफ़ नज़र आ रही थी।

मालिक ने मोटर की आवाज़ जैसे ही सुनी, कमरे से बाहर निकल आया। उटंगी काली शलवार पहने था, कपड़े मैले-कुचैले। जम्हाई लेता गुद्दी खुजाता हुआ आया और बड़ी मक्कारी से बोला, ''वाह...वाह, स्वागतम् हमारी यह बस्ती क़ालीनों से भरी थी, अब आपके आने से तो इसका रंग ही बदल गया है। लगता है, पिछली क़ालीनें आपको पसन्द आई हैं।''

गले के बटन बन्द करती हुई औरत बोली, ''ख़ैर, इतनी अच्छी भी न थी, भाई ने ख़रीदा था दाम भी न बताया।''

''ख़ैर दाम-वाम में तो कोई अधिक फ़र्क़ नहीं हुआ है। उसी का जोड़ा बन रहा है एकदम कमबख़्त मख़मल की तरह है। नमूना वहीं 'सादियाँ' का है। आइए कारख़ाने के अन्दर तशरीफ़ लाइए।'' आगे औरत पीछे दोनों मर्द अन्दर घुसे। उनमें से एक ने दाम पूछा—

''बस सौ रुपए।''

''सौ तूमान ज़्यादा हैं।''

''अगर पहले वाला दाम रखो तो समझो हमने ख़रीद ली।''

''नहीं जनाब, हमें पड़ता नहीं पड़ेगा। रंग महँगे हो गए हैं।''

दूसरा आदमी जो दलाल था, बोला, ''आधा रख लेते हैं, पचास तूमान, ख़ुदा बरकत देगा।'' एक रज़ामन्दी की मुस्कान सभी के होंठों पर खेल गई। औरत ने लड़कियों से कहा, ''लड़कियो अगर क़ालीन जल्दी ख़त्म की तो तुम्हारे लिए मैं फूलदार स्कार्फ़ लाऊँगी।'' पहला आदमी नोटों की गड्डी आगे बढ़ाता हुआ बोला, ''यह रहा आठ हज़ार नक़द, बाक़ी क़ालीन मिलने पर।''

''कोई बात नहीं, यह भी न देते तो कोई बात न थी,'' कहते हुए उसने रुपये मोड़कर नेफ़े में रख लिए।

ग़ुस्से से भरी मालिक की आवाज़ गूँज रही थी।

''दो महीना ही तो हुआ है यहाँ काम करते हुए, उसमें भी दो दिन उँगली के कट जाने से काम नहीं किया, तीन दिन रंग न था। इस तरह से पाँच दिन हुए।'' फिर मालिक ने आवाज़ थोड़ी और तेज़ की, ''और कमबख़्त काम भी तो नहीं जानती है, बार-बार ख़राब करती है।'' एक कश और लेकर बोला, ''अब बचे पचास दिन, उसकी मज़दूरी पचीस तुमान (रुपया) ठीक है न?''

गुलअफ़रोज़ के पिता हैदरअली ने सर नीचा करके आहिस्ता से कहा, ''ठीक है मालिक।''

''मेरे हिसाब में एक कौड़ी का भी हेर-फेर नहीं पाओगे। लोगों का एक पैसा भी खाना मैं हराम समझता हूँ।''

''ख़ुदा आपको बड़ी उम्र दे, आपके दस्तरख़ान से बचे टुकड़े हमें नसीब करे, हम इस नेकी का क्या बदला दे सकते हैं।''

''ठीक है, मगर एक बात याद रखना, जाड़े तक इधर मत आना। जब भी आओगे, गुलअफ़रोज़ का मन घर जाने के लिए बेचैन होगा।''

''आपका हुक्म सर आँखों पर।'' तभी बदहवास-सी असमत गिरती पड़ती

वहाँ आ पहुँची।

''मालिक, सिपाही आए हैं, आपको पूछ रहे हैं।''

ज़मींदार वहीं लेटा-लेटा चिंघाड़ा, 'इन कमबख़्तों को फिर मौक़ा मिल गया। जब तक इनके आगे हड्डी न डालो, ये टलेंगे नहीं। यह दारोग़ा ख़लील तो पूरा बिज्जू है। एक मील से लाश-जैसी गन्ध मारता है'। गली पार करके वह कारख़ाने पहुँचा, ''सलाम सरकार! यहाँ कहाँ खड़े हैं आप, अन्दर तशरीफ़ लाएँ। बातचीत करते हैं, तिरयाक पीते हैं।''

''फिर कभी! अभी तो वक़्त कम है, अभी सम्सोलाबाद भी जाना है। ख़बर मिली है, लाठियों से वहाँ आपस में सर फुटव्वल हुआ है।''

''कहीं पानी और ज़मीन को लेकर झगड़ा तो नहीं उठा?''

''नहीं एक शादी थी, दुल्हन किसी और से शादी करना चाहती थी, पहले से कहीं उसका चक्कर चल रहा था।''

ख़लील दारोग़ा ने मुँह में जमा हो गए थूक की एक पिचकारी ज़मीन पर मारी और गम्भीर होकर बोला, ''ये जो तुम्हारे यहाँ काम करने वाले हैं, बारह साल से कम के हैं। कानून तो जानते हो तुम! उसमें यह जुर्म है और इसे रोकना हमारा काम है।''

ज़मींदार ने सुनी अनसुनी करते हुए कहा, ''बड़ा अच्छा हुआ, जो आप इधर से गुज़रे, वह भी जाड़े की शुरुआत और भेड़ों को हलाल करने का मौसम आप जानते ही हो। बिना आपके हमारे गले से एक कौर भी उतरे। कल ही अपनी पत्नी से कह रहा था कि एक पूरी भेड़ आपको भेंट कर दूँ, अब आप जो कहें।''

दारोग़ा नर्म पड़ गया और बोला, ''तुम हमेशा मुझे शर्मिंदा करते हो, ख़ैर भेड़ ज़िबह कर गोश्त भेज देना।''

ख़लील दारोग़ा ने सिपाहियों की तरफ़ मुँह मोड़ा और कहा, ''चलो चलें, वरना वहाँ एक भी नहीं बचेगा।''

रात अँधेरी और ख़ामोश थी। आसमान पर बादल घिरे हुए थे। कारख़ाने के फ़र्श पर तीनों लड़कियाँ कड़कते जाड़े में काँपती ठिठुरती एक फटे लिहाफ में सिकुड़ी पड़ी थीं। अलाव भी राख हो गया था। एकाएक गुलअफ़रोज़ बोली, ''असमत, जाग रही हो?''

''हाँ बहुत ठंड है। मुझे नींद नहीं आ रही है। मगर शायद मासूमा सो गई है।'' असमत ने मासूमा के शरीर को छुआ—ठंडी पड़ी थी...।

सुबह होते ही बड़ा उस्ताद लम्बा गर्म चेस्टर पहने, सर पर गर्म मफ़लर बाँध कमरे में दाख़िल हुआ।

''अभी तक पड़ी सो रही हो?'' असमत और गुलअफ़रोज़ के भरे गले से आवाज़ नहीं निकल रही थी, ''उस्ताद... उस्ताद मासूमा उठ नहीं रही।''

''गू खाती है ससुरी, पूरा ख़ानदान इसका नाश हो! बड़े उस्ताद ने लिहाफ़ के ऊपर से ही एक ज़ोरदार लात मासूमा के जमाई और लिहाफ़ को उसके ऊपर से खींचा तो फ़ौरन उसके माथे पर सलवटें पड़ गईं और गले में कुछ ऊपर-नीचे होने लगा। हकलाते हुए वह बोला, ''ऐ... ऐ... यह कैसे हो सकता है।'' फिर ख़ुद ही जवाब दिया। हाँ, तो इसका काम तमाम हो गया। फिर तेज़ी से ज़मींदार के घर की तरफ़ भागा और वहाँ जाकर बोला 'मालिक... मालिक... मासूमा ऐंठ गई है।''

''मर गई है... ? कुत्ते की औलाद, यह कौन-सी ज़रूरी बात थी कि जो मुझे जगाने आ गया? मैंने सोचा भेड़िया भेड़ों के बाड़े में घुस आया? घबराने की बात नहीं है। बहा दो! बस ध्यान रहे कहीं अटके न।''

मासूमा की लाश को ठिकाने लगाकर जैसे ही वह कारख़ाने लौटा, आराम से बैठकर उनसे पूछा, ''अगर किसी ने पूछा कि मासूमा कहाँ गई है तो क्या जवाब दोगी।'' गुलअफ़रोज़ ने कहा, ''कहेंगे, सुबह जगाया तो उठी ही नहीं, और आपने उसे...'' सुनते ही उस्ताद ने उसके मुँह पर एक हाथ मारा।

''कमबख्तो! अगर यह बात कहीं कही तो खाल खींच लूँगा। तुम दोनों एक ही बात कहना कि माँ के पास गई है।''

''ठीक है उस्ताद'' वे बोलीं।

वह ठंडी रौशन रात थी। बहार का प्रारम्भ, जंगली फूलों की ख़ूशबू हवा में बसी हुई थी। भेड़ें चर रही थीं और कहीं से बाँसुरी की आवाज़ वातावरण में गूँज रही थी। गुलअफ़रोज़ ख़ुशी से बेहाल बैठी थी। तय है कि कल बाप ख़ुद आएगा और उसे बीजम ले जाएगा। आज पाँच साल के बाद पहली बार उसके मुँह पर हँसी खेल रही थी। कड़वे दिन उसे एक-एक करके याद आ रहे थे। पिछले जाड़ों में एक रात असमत भागी, मगर रास्ते में बर्फीले तूफ़ान में फँस गई, फिर उसकी कोई ख़बर न मिली।

आगे की यादें मालिक के कुत्ते के भौंकने में गुम हो गईं। मालिक लँगड़ाता हुआ कारखाने का दरवाज़ा खोलकर अन्दर पहुँचा और दरवाज़ा बन्द कर लिया।

''कहाँ है मेरी कबूतरी? तुम कल जाना चाह रही हो, मुझे अभागा बनाकर, बेमुरव्वत! कितना खर्च किया है तुझ पर मैंने! यह बदन मेरे ही दया, धर्म से तो बड़ा हुआ है।''

गुलअफ़रोज़ भय से अधमरी हो गई। उसकी ज़बान तालू से चिपक गई। छोटे उभारों वाला उसका सीना धौंकनी की तरह चलने लगा। तभी मालिक बेताब-सा उसकी तरफ़ बढ़ा। भूखे भेड़िये की तरह हू-हा करती उसकी आवाज़ कामवासना को बढ़ा रही थी। एकाएक उसने गुलअफ़रोज़ को दबोचा। गुलअफ़रोज़ ने पूरे ज़ोर से उसका मुँह नोचा और भागी। फुर्ती से मालिक ने हमला किया ओर गुलअफ़रोज़ का गला अपने भारी हाथों में दबोच लिया। गुलअफ़रोज़ बिना किसी आवाज़ के ढीली पड़ गई। घुटने मुड़ गए। खून और फेन से सनी लार नाक और मुँह से बह निकली। मालिक ने वासना के दहकते शोले को शान्त किया और एक विजयी पहलवान की तरह क़िले को जीत शान से बाहर निकल गया। ख़ून की बूँदें क़ालीन बुनने के ताने-बाने पर फैल रही थीं। धागों पर फैलती बूँदें नुचे लालों की पँखुड़ियों सी दीख रही थीं। गुलअफ़रोज़ ठंडी और शान्त क़ालीन की बुनाई के चौखटे के नीचे पड़ी थी। उसकी खुली बेनूर आँखें अधबुनी क़ालीन के दहकते लाल फूलों पर जमी हुई थीं।

आदम की औलाद

जलाल अल अहमद

आख़िर मैं कर भी क्या सकती थी? शौहर मुझे मेरे बच्चे के साथ घर में रखने पर राज़ी न था। बच्चा स्वयं उसका न था बल्कि मेरे पहले शौहर से था, जिसने मुझे तलाक़ दे रखी थी और बच्चे की सारी ज़िम्मेदारी से इनकार कर दिया था। मेरी जगह अगर और कोई होता तो क्या करता ऐसे हालात में? मुझे भी तो ज़िन्दगी की गाड़ी खींचनी ही थी। अगर इस शौहर ने भी तलाक़ दे दी तो? इस ख़्याल की वहशत से मजबूर हो गई थी कि बच्चे का वजूद इस घर से सदा के लिए मिटा दूँ।

एक घरेलू अनपढ़ और जाहिल औरत वह भी मेरी तरह की जो दुनिया के बारे में न अच्छा जानती है न बुरा। जिसके सामने कोई अन्य राह न हो तो वह इसके अलावा सोच भी क्या सकती है? मुझे कई संस्थाओं के बारे में बस इतना पता था कि वे बच्चे लेते हैं, मगर गारंटी क्या थी कि वह मेरे बच्चे को लेना क़ुबूल कर लेंगे? मुझसे महीनों तक प्रतीक्षा करने को नहीं कहेंगे और मेरे और मेरे बेटे पर तरह-तरह के लांछन नहीं लगाएँगे। मेरे मन में शंका थी कि वे बिना किसी सरदर्द के मेरे बेटे को क़ुबूल कर लेंगे आख़िर मुझे कहाँ से इसका इल्म होता है। कहाँ से आख़िर? मैं अन्त ऐसा न चाहती थी मगर मजबूर थी।

सब-कुछ कर चुकने के बाद मैं घर लौटी। माँ से सब-कुछ बता दिया। वहाँ कुछ पड़ोसिनें भी बैठी थीं। उन्होंने भी सब-कुछ सुना। सुनकर जाने किस औरत ने यह बात कही थी, मुझे ठीक से अब याद नहीं है। ख़ूब! अरे लड़की अगर बच्चे को नहीं चाहती थी तो बाल बाड़ी या अनाथालय ले जाती... जाने कहाँ-कहाँ का वह नाम-पता बताती-गिनवाती रही।' अन्त में उसकी बात काटते हुए माँ बोली वह तो सब ठीक है मगर वह इस बच्चे को जगह भी देते? यह मैं ख़ुद जानती समझती थी तो भी उस औरत के कहने से मेरे मन में उथल-पुथल मच गई। पेट में कुछ निकलकर बाहर आने के लिए तड़पने लगा। माँ से बोली, काश मैं एक बार वहाँ जाकर तो देखती। मगर स्वयं से बोली, कहाँ जाती, न पता पास था न वहाँ के क़ायदा-क़ानून का कुछ पता था। कहाँ से जाती सर टकराने? अरे अब तो बहुत देर

हो चुकी है। उस औरत की बातों से मेरा मन दुख से भर उठा। कोई मेरे दिल को कुरेद रहा था। बेटे की तुतली रस में डूबी आवाज़ कानों में गूँजने लगी। मन ऐसा व्याकुल हुआ कि सारी शर्म-हया छोड़ सबके सामने फूट पड़ी। यूँ रोना कितना बुरा था? मैं अपने ऊपर नियंत्रण न कर पाई। तभी किसी की आवाज़ कानों में पड़ी, ''रो भी रही है, शर्म नहीं आती इसे।''

यह सब-कुछ देखकर माँ मेरी वकालत में बोली : जो वह कह रही थीं वह उचित भी था कि तुम जवान हो, काहे के लिए एक बच्चे के लिए आँसू बहा रही हो? और फिर तुम्हारा शौहर भी उस बच्चे को पसन्द नहीं करता है। अभी तुम्हारी जवानी की शुरुआत है। जितने चाहो एक के बाद एक पैदा कर लेना। तीन-चार, जितने चाहे। ठीक है वह मेरा पहला बच्चा था। पहलौठी की औलाद के साथ ऐसा नहीं करना चाहिए था, मगर अब तो जो हुआ सो हुआ इसके बारे में कुछ सोचना भी फ़िज़ूल है।

मुझे उसके वजूद से कोई दुख न था, मगर मेरा शौहर उसको फूटी आँखों देखना नहीं चाहता था। मैं ऐसा काम कभी न करती मगर शौहर मेरे पीछे हाथ धोकर पड़ गया था। उसका कहना ठीक ही तो था कि वह किसी भी उल्लू के पट्ठे को रोटी नहीं खिला सकता। मैंने भी तो निकाह के समय अपनी ज़िन्दगी का सारा अधिकार उस शौहर को सौंप दिया था। मैं स्वयं को उसकी जगह रखकर सोचती। क्या मैं शौहर के बच्चे का वजूद इस घर में सहन कर सकती थी? क्या उसे अपनी गृहस्थी पर बोझ न समझती? तो फिर ठीक है वह भी इसी तरह सोचता है। उसको भी हक़ पहुँचता है कि मेरे बच्चे, नहीं-नहीं मेरे शौहर के बच्चे, नहीं बल्कि उसके अनुसार किसी अन्य उल्लू के पट्ठे को वह क्यों बर्दाश्त करे।

दो ही दिन तो गुज़रे हैं मुझे अपने इस नये घर में आए, मगर इन दो दिनों में मेरे कान ऐसे पक गए हैं कि तौबा बोल गई। उस दिन रात को वह बच्चे की समस्या पर काफ़ी देर तक बोलता रहा था। मैं चुपचाप सर झुकाए सब कुछ सुन रही थी। अन्त में मैंने पूछा क्या करूँ फिर इस बच्चे का? थोड़ी देर तक वह ख़ामोश रहा फिर सोचते हुए बड़ी लापरवाही से बोला, ''मैं कुछ नहीं जानता कि क्या करो, मगर मैं इस उल्लू के पट्ठे को क्षण भर भी बर्दाश्त नहीं कर सकता हूँ। तुम स्वयं जो उचित समझो करो।'' यह कहकर वह मेरे पास से उठ गया। उस रात वह मेरे समीप नहीं आया जैसे मुझसे रूठा हुआ हो। ग़ुस्से से उसने सब-कुछ कह दिया था, अपनी हरकतों से दर्शा दिया था। मगर न राह सुझाई थी न तरकीब बताई थी।

तीसरी रात हम साथ-साथ सोए मगर मुझे महसूस हो रहा था कि वह आन्तरिक क्रोध को बरबस रोकने का प्रयत्न कर रहा था। मैं अब अच्छी तरह समझ चुकी थी

कि वह अपने व्यवहार से मुझे उत्तेजित करना चाह रहा है, ताकि मैं उस बच्चे के बारे में कोई निर्णय शीघ्र ही ले लूँ। सुबह जब काम पर जाने लगा तो बोला, 'दोपहर को लौटूँगा तो इसकी शक्ल न देखूँ, समझीं।'

मैं अच्छी तरह से उसकी बात में छुपी अपनी परेशानी को समझ चुकी थी। अब मुझे इसे शीघ्रातिशीघ्र हल करना था।

मैं अब जितना भी सोचती हूँ समझ नहीं पाती हूँ, आख़िर मुझसे यह सब हुआ कैसे? यह दिल कैसे राज़ी हुआ इस निर्दय काम पर? मेरे हाथ में कुछ भी तो न था। जैसे ही शौहर घर से बाहर निकला मैं भी बौखलाई, घबराई सी सर पर चादर डालकर निकल गई थी। मेरा बेटा तीन वर्ष का हो गया था। मज़े से पैदल चलता था। बस ख़राबी यही थी कि मैंने इसे बड़ा करने में तीन वर्ष व्यर्थ गँवाए थे। रात को जाग-जागकर इसे पाला-पोसा था। अब तो उन सारी तकलीफ़ों का समय समाप्त हो गया था और अब आराम के दिन थे तो मुझे यह फ़ैसला करना था।

बस स्टैंड तक हम लोग पैदल गए। उसके पैरों में मैंने आज जूते पहना रखे थे, नीला पैन्ट कोट, जो मेरे पहले शौहर ने आख़िरी बार इसके लिए ख़रीदा था, पहनाया था, जो उस पर बहुत फब रहा था। मैं जब नया जोड़ उसे पहना रही थी तो एक विचार बार-बार परेशान कर रहा था। ''अरी बेवक़ूफ़! अब काहे को इसे नया कपड़ा पहना रही हो? कल तुम्हारे बच्चा हुआ तो उसके काम नहीं आएगा? फिर लगा उसके लिए उसका बाप ख़रीदकर लाएगा। मन न माना, उसे वही जोड़ा पहनाया। बालों में ब्रश किया। आज वह बहुत सुन्दर लग रहा था। एक हाथ से उसकी उँगली पकड़ी दूसरे से ओढ़ी हुई चादर को चारों तरफ़ से लपेटकर कमर के पास सँभाली। आज मुझे उसे धीरे-धीरे चलने पर तनिक भी क्रोध न आ रहा था। आज यह आख़िरी मौक़ा था जब मैं उसे लेकर गली में आई थी। रास्ते में कई बार उसने मिठाई ख़रीदने की हठ की, मगर मैं नहीं झुँझलाई बल्कि उसे बहलाते हुए प्यार से बोली 'बस पर चढ़ेंगे, फिर तुम्हारे लिए 'काका' ख़रीदेंगे।' मुझे अच्छी तरह से याद है कि उस दिन भी वह अन्य दिनों की तरह मुझसे अनगिनत प्रश्न कर रहा था।

घोड़े का पैर फिसलकर पानी के गड्ढे में चला गया तो लोगों की ख़ासी भीड़ वहाँ जमा हो गई थी। मेरा बेटा भी मुझसे ज़िद करने लगा था कि मुझे गोद में उठाकर दिखा दो। घोड़े के पैर में ख़राश आने से उसके ख़ून निकलने लगा था। उसे देखकर मैंने जब ऊपर से नीचे उतारा तो बोला, ''मम्मी घोड़ा गिल गया है,'' ''हाँ, बेटे जब कोई माँ का कहना नहीं सुनता तो ऐसा होता है। उसने नहीं सुना होगा अपनी मामाना का कहना।''

धीरे-धीरे चलते हुए हम बस स्टैंड पर पहुँचे। सुबह का समय था। ग़ज़ब की

भीड़ थी। आधा घंटा गुज़र गया। बस में जगह न मिली। वह भी खड़े-खड़े थक गया था। बार-बार पूछ रहा था। क्या हुआ? बस नहीं आई? उसके प्रश्नों से मैं थक चुकी थी। मेरे सब्र का पैमाना भर चुका था। 'तलिए काका खलीदते हैं।' तंग आकर मैंने कहा, ''बस अभी बस आने वाली है फिर हम ढेर सारा काका ख़रीदेंगे।'' अल्लाह-अल्लाह करके सात नम्बर की बस मिली उस पर बैठ गया। रास्ते भर वह तरह-तरह के प्रश्न पूछ रहा था। एक बार मुझे याद है उसने पूछा था, ''हम तहाँ जा लहे हैं?''

''तुम्हारे बाबा के पास, बेटे।''

''तौन वाले बाबा?''

''अरे मेरे बेटे! कितना बोल रहे हो तुम? अगर इतना बात करोगे तो फिर मैं काका ख़रीदकर नहीं दूँगी, हाँ।'' यह सुनते ही वह सहम गया था। मेरा मन कोई मथ रहा है, क्यों इस जुदाई के अन्तिम क्षणों में मैंने इस बच्चे का दिल तोड़ा था। क्यों उसका मन न रख पाई थी, कैसी मन में आग लग रही है। कैसा दिल जल रहा है। यह सब-कुछ सोचकर, घर से जब निकली थी तो क़सम खाई थी कि रास्ते भर काम के अन्त तक तनिक क्रोध नहीं करूँगी, न खीझूँगी, बल्कि प्रेमपूर्वक व्यवहार करूँगी। अब दिल दुख रहा है कि क्यों मैंने ऐसा कहकर उसे शान्त कर दिया था। उसके मुँह को सिल दिया था?

इसके बाद वह मेरा मासूम बेटा चुप हो गया था, मेरी ओर से उदासीन-सा कंडक्टर उससे बातें कर रहा था। तरह-तरह के मुँह बनाकर उसे दिखा रहा था। वह सब-कुछ भूलकर उसके साथ घुल-मिल गया था। ख़ूब बातें बना रहा था, मगर मैं बुत बनी ख़ामोश बैठी थी। न कंडक्टर की ओर ध्यान दे रही थी न बेटे की बातों पर मुस्करा रही थी। वह बीच-बीच में मेरी इस ख़ामोश काया को देखता था, फिर बातों में मगन हो जाता था।

बस मैदान शाह पर रुकी। उतरते समय भी वह हँस रहा था, खिलखिला रहा था। इधर-उधर बसें-ही-बसें नज़र आ रही थीं। भीड़ ग़ज़ब की थी। ऐसे शोरगुल के माहौल में यह काम करते मैं घबरा रही थी। वहाँ पर बेचैन बड़ी देर तक टहलती रही। आधे घंटे बाद जगह कुछ ख़ाली हुई। बसों की संख्या कुछ कम हुई। टहलती हुई मैदान के समीप पहुँची और पर्स से आधा पैसा निकालकर बेटे के हाथ पर रखा। वह बौखलाकर परेशान आँखों से टुकुर-टुकुर मुझे ताकने लगा। न उसे पैसे की पहचान थी न उसके महत्त्व का अन्दाज़ा। अभी तक मैंने कभी ऐसा किया भी न था कि पैसा पकड़ना सीखता।

मैदान के उस पार एक मेवे वाले की दुकान की तरफ़ इशारा करते हुए मैंने कहा,

'यह लो पैसा और वह जो दुकान है न, वहाँ जाकर काका ख़रीद लो, तुम तो जानते हो न ख़रीदना।' बेटे ने पहले पैसे पर नज़र डाली फिर मुझ पर। वह दो दिल हो रहा था। उसकी समझ में मेरी बात नहीं आ रही थी। मैं समझ नहीं पा रही थी कि उसे कैसे समझाऊँ, ''मम्मी तुम भी आओ छात छात चलते हैं।''

''नहीं बेटे, तुम जाओ। तुम जानते हो न ख़रीदना शाबाश।'' बच्चे ने एक बार पैसे को देखा फिर मुझे उसकी समझ में चीज़ ख़रीदना नहीं आ रहा था। कभी उसने ऐसा पहले किया भी तो न था। टुकुर-टुकुर-सा भोली-भाली आँखों से मुझे वह ताक रहा था। कैसी थीं वे निगाहें? मेरे दिल के टुकड़े-टुकड़े कर रही थीं वे निगाहें। तबीयत बिगड़ने-सी लगी। दिल जैसे दुखने-सा लगा। मुझसे यह काम नहीं हो सकता है। ऐसा दिल तो उस समय भी नहीं फटा था, जब मैं उसे छोड़कर भागी थी। न उस समय ऐसी टीस उठी थी जब पड़ोसिनों के सामने फूट-फूटकर रोई थी। ऐसी हालत, ऐसी निर्बलता, ऐसा दुख तो मैंने कभी महसूस नहीं किया था। लगा था मेरा सारा अस्तित्व बिखर जाएगा। कैसी थीं वे निगाहें?

वह चकराया अपना मासूम चेहरा ऊपर उठाए खड़ा था। चेहरे पर ऐसा भाव लिए जैसे वह मुझसे कुछ पूछना चाह रहा है। कुछ समझना चाह रहा है। बयान नहीं कर सकती हूँ कि उस लम्हे मैंने अपने ऊपर कैसे क़ाबू पाया था। एक बार फिर मेवे वाले की दुकान दूर से दिखाई और कहा, ''जाओ मेरे दिल के टुकड़े। यह पैसा उसे दिखा देना वह तुम्हें कद्दू के बीज दे देगा, जाओ। शाबाश।'' उसने वहाँ दूर से मेवे की दुकान पर नज़र डाली फिर रोने, ठुनकने ज़िद जैसा उपक्रम करता हुआ बोला, 'मुझे कद्दू के बीज नहीं किछमिछ चाहिए?''

मेरी हालत पल-पल ख़राब होती जा रही थी। मुझे लग रहा है कि अगर इस समय इस बच्चे ने पल भर की देरी की होती या रोना शुरू कर देता तो मैं हथियार डाल देती। मगर वह रोया नहीं, वैसे ही खड़ा रहा। मैं उत्तेजना के मारे क्रोध से भर उठी। सन्तोष का दामन हाथ से छूट गया। चीख़कर बोली, ''उसके पास किशमिश भी है जाओ, जो चाहते हो इस पैसे से ख़रीद लो, जाओ, जाओ तो।'' उसे फुटपाथ से उठाकर नाली के उस पार सड़क पर खड़ा कर दिया। उसकी कमर पर पीछे से हाथ रखकर हलके से आगे धक्का दिया, ''जाओ! नहीं तो देर हो रही है।''

सड़क ख़ाली थी। यहाँ से वहाँ तक किसी भी सवारी का कोई चिह्न न था। इसलिए बच्चे को कुचल जाने का भय न था। वह दो-तीन क़दम ही चला होगा कि पीछे मुड़कर बोला, ''मम्मी वहाँ किछमिछ होगी?''''हाँ-हाँ, जानम। वहाँ किशमिश होगी। तुम आधा पैसा देकर कहना किशमिश चाहिए?'' इतना सुन वह आगे बढ़ा। अभी वह आधे ही रास्ते पर था कि कहीं से मोटर के हार्न की आवाज़ गूँजी। सुनते

ही घबरा उठी, क्या करूँ? पागलों की तरह एक ही छलाँग में सड़क पर पहुँची और दौड़ती अपने जिगर के टुकड़े को गोद से उठा सीने से लिपटा लिया और घबराई-सी लोगों की भीड़ में छुप गई। सर से पैर तक मैं पसीने से नहाई हुई थी, दिल बुरी तरह धड़क रहा था बेटा बार-बार पूछ रहा था—

''मम्मी तया हुआ?''

''कुछ नहीं बेटे। बीच सड़क पर जाकर आदमी को तेज़ी से सड़क पार करनी चाहिए। तुम धीरे-धीरे जा रहे थे, क़रीब था कि तुम किसी पहिए के नीचे आ जाते। इतना कहते-कहते मुझे लगा था कि मैं रो पड़ूँगी। बच्चा जो मेरे गोद में था बोला, ''अच्छा! फिल मुझे उताल दो। इछ बाल तेज़ दाऊँगा।'' अगर वह यूँ न कहता तो शायद मुझे याद भी न आता कि मैं यहाँ किस काम से आई थी। उसके इन शब्दों ने मुझे दोबारा होश में ला दिया था। अभी मैंने आँखों के आँसू भी ठीक से नहीं पोंछे थे कि मुझे सब-कुछ याद आ गया कि मुझे करना क्या है? मैं किस लिए यहाँ आई थी। मुझे अपना शौहर याद आ गया जो मुझे धमकाकर गया था। जो मुझे उत्तेजित करके शीघ्र ही निर्णय चाहता था। घबराकर बेटे के गालों का चुम्बन लिया। यह आख़िरी चुम्बन जो मैंने उसके नर्म मुलायम गालों पर लिया था। गोद से उतारकर उसके कानों में धीरे से कहा, ''मेरे लाल! तेज़ी से जाना कहीं फिर कोई मोटर न आ जाए।''

सड़क ख़ाली पड़ी थी। वह तेज़ी से भागता हुआ सड़क पार कर दूसरी ओर खड़ा हो गया। चलते समय उसके नन्हे-नन्हे पाँवों को देखकर लग रहा था कि कहीं वह आपस में उलझ न जाएँ और वह ठोकर खाकर गिर न जाए। उसने पहुँचकर मेरी तरफ़ मुड़कर देखा। मैं चादर को अच्छी तरह लपेटकर कमर के पास से उसे हाथों में सँभाले वापस जाने को तैयार थी। जैसे ही उसने मुड़कर मेरी तरफ़ देखा मेरा उठा क़दम वहीं जम गया। भय से सूख गई। ठीक है मैं नहीं चाहती थी कि वह जाते हुए मुझे देखे मगर भय से यूँ जमने का क्या अर्थ था? जैसे चोर चोरी करते हुए रँगे हाथों पकड़ लिया जाए? ठगी रह गई थी। हाथ चादर पकड़े वहीं जम गया था।

ठीक इस प्रकार से मेरा हाथ पहले वाले शौहर की जेब में था कि वह आ गया था। जेब टटोलता हाथ वहीं जम गया था। डर के मारे सूख गई थी। दोबारा मैं सर से पैर तक पसीने से नहा गई। सर उसकी आँखों की ताब न ला सका और सिर नीचे झुक गया। जब बड़ी मुश्किलों से ऊपर उठाया तो देखा वह दोबारा छोटे-छोटे पैर उठाता आगे बढ़ रहा था। मेवे की दुकान से उसका फैसला बहुत कम रह गया था। मेरा बोझ उतर गया था। मेरी ज़िम्मेदारी पूरी हो चुकी थी। वह सड़क के उस पार सही सलामत पहुँच गया था। यह वही क्षण था, जब मैंने पहली बार महसूस किया

कि मेरी कोई सन्तान नहीं है। मैंने किसी बेटे किसी बच्चे का जन्म नहीं दिया है। आख़िरी बार जब उस पर नज़र डाली तो लगा जैसे वह किसी और आदमी का बच्चा है। यह बच्चा प्यारा गदगदा-सा जिसे मैं देख रही हूँ ठीक वैसा ही लगा जैसे सड़क पर गुज़रते कोई बच्चा दिख जाए। मैंने भी एक रहगुज़र की तरह नज़र डाली जो अधिकतर बच्चों पर निगाह डालकर बिना कुछ महसूस किए हुए आगे गुज़र जाते हैं। मैं इसी तरह से किसी अन्य आदमी के बच्चे पर निगाह डालकर आगे बढ़ गई। भीड़ में जाकर मिल गई, गुम हो गई।

अनायास एक डर की लहर उठी। कहीं कोई मेरा पीछा तो नहीं कर रहा है। इस विचार के आते ही मेरे बदन के रोएँ खड़े हो गए और मैं बड़ी फुर्ती से आगे बढ़ने लगी। मैं सोच रही थी तंग गलियों में घुसकर वहाँ से निकल जाऊँगी और भागने में कामयाब हो जाऊँगी। बड़ी कठिनाई से अपने को आगे घसीट रही थी तभी पीछे से किसी कार के रुकने की आवाज़ से सहम गई कि अब पकड़ी गई। चौराहे पर खड़ा पुलिसमैन सब देख रहा था। टैक्सी पर बैठ मेरे पीछे आया है, अब मुझे गिरफ़्तार करेगा। किसी तरह हिम्मत करके पीछे मुड़ी तो सामने किराए वाली टैक्सी खड़ी थी। कुछ सवारियाँ किराया देकर जा रही थीं, कुछ दे रही थीं। सन्तोष की साँस खींची। तभी, फिर ख़्याल आया, मैं या मेरी आँखें अब और कुछ न देख लें। इस ख़्याल की वहशत से व्याकुल होकर आगे बढ़ी। टैक्सी पर बैठ फटाक से उसका दरवाज़ा बन्द किया। दरवाज़े की तेज़ आवाज़ से ड्राइवर हड़बड़ाया और टैक्सी स्टार्ट की। दरवाज़े के बीच में मेरी चादर फँसी हुई थी।

जब टैक्सी थोड़ी दूर निकल गई तो इतमीनान की साँस लेकर धीरे से दरवाज़ा खोला चादर खींचकर दोबारा आहिस्ता से दरवाज़ा बन्द किया और आराम से सीट से टेक लगाकर बैठ गई। सर को पीछे कर एक लम्बी ठंडी सन्तोष भरी साँस खींची। बहरहाल उस रात शौहर से टैक्सी का पैसा निकलवाने में कामयाब न हो सकी।

हातिम और लैला

नासिर ज़ेराअती

हातिम एक जान नहीं, बल्कि सौ जान से लैला पर फ़िदा था। वह कब से लैला का आशिक़ था उसे पता नहीं, मगर उसके इस भाव को लैला ताड़ गई थी। वहीं पर मोहल्ले के सारे लोग इस राज़ से आशना हो चुके थे। होते भी कैसे नहीं, सबके सामने हातिम ने स्वयं दर्दे दिल बयान किया था। मोहल्ले के दुकानदार, बेकार नौजवान, गली में खेलते बच्चों के सामने। अब तो बात यहाँ तक पहुँच गई थी कि काली सकीना अर्थात् लैला की माँ को भी पता चल गया था।

हातिम क़रीब बीस वर्ष का एक दुबला-पतला छोटे क़द का जवान था। सर के बाल काले और चिकने थे। बड़ी-बड़ी हँसती हुई मेहरबान काली आँखें थीं और ख़ूब काली घनी भौंहें थीं जो पलकों पर झुकी हुई लगती थीं। लाल-लाल होंठों के बीच से झाँकते सफ़ेद दाँत और उभरी हड्डी वाला उसका पतला चेहरा बड़ा मासूम था। उसकी दाढ़ी नहीं निकलती थी बस मुट्ठी भर बाल ठुड्डी के नीचे थे जो वह हमामख़ाने में स्वयं ब्लेड से साफ़ कर लेता था। छोटे और प्यारे कान, जो पीले रंग के मैल से हमेशा भरे रहते। पतली लम्बी गर्दन पुरानी कमीज़ के गन्दे कालर के बीच डगमगाती सी नज़र आती थी। पुरानी पैन्ट में क़रीब छह जेब थे। दो पीछे, चार आगे, एक के ऊपर एक बने हुए थे और उन पर बटन लगे हुए थे।

बच्चे अकसर पूछते थे, ''हातिम तुम्हारे पैन्ट में इतने जेब क्यों हैं?''

''ये जेब तो मेरे पैसों के लिए हैं, एक में चवन्नी रखता हूँ, एक में दस पैसा, एक में 50 पैसा और इसमें 5 पैसा, रहा रुपया उसको मैं थैली में डालता हूँ।'' यह कहकर कमर के अन्दर घुसी थैली निकालकर दिखाने लगता।

फिर बच्चे पूछते, ''और पीछे वाली जेब?''

''वह मेरे अपने हैं, उन्हें छोड़ो,'' हातिम हँसता हुआ उत्तर देता। हमेशा पैन्ट को मोड़े रहता जिससे उसकी सूखी टाँगें नज़र आती, जिनके नीचे फटा-पुराना प्लास्टिक का जूता दिखता था।

बच्चे उससे मज़ा लेने के लिए कहते, ''हातिम, आँख मारना!''

हातिम यह सुनकर फटे जूते से पैर का अँगूठा निकालता और आगे के फटे

हिस्से से हिलाता हुआ बच्चों के साथ ख़ूब दिल खोलकर हँसता। उसके लम्बे पतले सफ़ेद हाथों के नाख़ून हमेशा काली मैल से भरे रहते थे। उसे देखकर लड़के पूछते, ''क्यों हातिम तुम अपने गन्दे नाख़ून क्यों नहीं काटते हो?''

हातिम बड़े दार्शनिक अन्दाज़ से मुस्कराता फिर हौले की तानें अलापता रहता था और जब से आशिक़ हुआ था लैला का तब से केवल 'लौला' काव्य-खंड ही गुनगुनाता था।

कभी-कभी लड़के उसे घेर लेते थे, ''हातिम हमारे लिए गाओ।'' कभी-कभी उसका मूड होता तो ख़ूब बढ़िया गाना गाता, कभी कहता आज नहीं फिर कभी। आज बहुत थक गया हूँ। बिलकुल मन नहीं कर रहा है, कल सुनाऊँगा।

लड़के सुनकर ज़िद न करते बल्कि खेलने निकल जाते थे।

लैला अठारह वर्ष की हो गई थी, मझोला क़द, लम्बे खजूर के रंग के बाल, आँखें व भौंहें काली, गोल सफ़ेद चेहरा, छोटे-छोटे लाल होंठ, भारी सीना, बदन गदबदा ज़रूर था मगर बहुत सुडौल था। कुल मिलाकर लड़की की लापरवाह हँसी और चमकती आँखें बरबस ही ग्राहकों के मन में चुभ जाती थीं। वैसे आवाज़ भारी थी, मगर वह स्वयं बड़ी बातूनी और लच्छेदार बातें करती थी। उसमें एक ही ऐब था। वह था उसके मुँह के चेचक के दाग, गोल भरा चेहरा ढेरों गड्ढों से भरा हुआ था।

छींटदार सफ़ेद चादर हमेशा ओढ़े रहती थी। पुराना फूलदार गुलाबी जम्पर और नीचे शलवार और काली चप्पल पहने होती। जब कभी माँ नहीं होती तो बड़े आराम से शलवार को ऊपर उठा लेती, जिससे उसके सुडौल सफ़ेद पैर नज़र आने लगते थे। चादर को शाने से नीचे गिराकर बँधे बाल को खोल देती थी। और जैसे ही किसी ग्राहक को देखती तो घबराकर बड़ी अदा से अपने को छुपाने की कोशिश करती थी। फिर एक दिलरुबा नज़र ग्राहक पर डालकर घबराहट में गिरी चादर को दोबारा ठीक से सर पर ओढ़ती थी।

रास्ता चलते में चादर में छुपे उसके बदन के उभारों के पास चादर पर शिकन बनती बिगड़ती थी।

ये वे दिन थे जब कि हातिम लैला पर हज़ार जान से आशिक़ नहीं हुआ था। मोहल्ले के सारे लोग लैला से छेड़छाड़ करते थे। बनिया भी उसे बहाने से रोके रखता था और लैला भी यही चाहती थी। खड़ी-खड़ी अदाओं का सौदा करती थी। मीठी-मीठी बातें करती। कभी-कभी खेल से थके बच्चे लैला को मज़े के लिए चिढ़ाते, ''लैला सुन्दरी! लैला।''

पहले तो लैला हँसकर टाल जाती थी फिर पत्थर उठाकर पीछे भागती थी,

''बेवक़ूफ़ो, गधो, शैतानो, जाओ अपनी माँ-बहन से करो मज़ाक़।''

बच्चे और लड़के भागकर गली के नुक्कड़ पर छुप जाते और वहाँ से शक्ल बना-बनाकर लैला को चिढ़ाते थे। यह सब देखकर लैला बच्चों की माँओं से शिकायत करने पहुँचती। वहाँ भी असर न देखकर वह ख़ूब गालियाँ बकती, जिसे सुनकर अकसर लोग उसे समझाते, ''लड़की, तेरी ही ग़लती है जो तू यूँ रास्ते में मटकती अदाएँ दिखाती चलती है कोई क्या करे।'' ऐसा उत्तर सुनकर लैला फूट-फूटकर रोती थी और जी भरकर बच्चों और उनके घरवालों को कोसती थी। तब कहीं जाकर अपने घर लौटती थी।

मगर जब से सबको पता चला गया था कि हातिम लैला पर आशिक़ हो चुका है, ग्राहकों ने लैला की तरफ़ देखना कम कर दिया था और बच्चों ने उसे चिढ़ाना छोड़ दिया था।

हातिम खौंचेवाला था। एक गाड़ी जाने कहाँ से टूटी-फूटी मिल गई थी उसको। तार और रस्सी से कस-कसाकर ठेलने के क़ाबिल बना लिया था। उस पर एक अंडाकार सेनी जमा दी थी। जाड़े के दिनों में वह बादाम, हरे टमाटर, इत्यादि बेचता था और गर्मियों में जो भी हाथ लगता था उसे बेचने लगता जैसे सूखा आलूबुख़ारा, इमली, अमावट, भिंडी, लौंग—एक तरफ़ छोटा-सा तराज़ू व पत्थर के विभिन्न अंदाज़े के बाट थे।

लैला पर आशिक़ होने से पहले वह बड़ी खुली आवाज़ से गली-कूचों में फेरी लगाता अपने सामान की तारीफ़ करता था या फिर लड़के-लड़कियों के स्कूल की तरफ़ निकल जाता जहाँ उसे पैसा मिलने की काफ़ी उम्मीद रहती थी। उसे देखते ही लड़के भीड़ लगा लेते थे।

''हातिम, एक सेर सूखा आलूबुख़ारा।''

''पाँच पैसे की इमली देना।''

''पच्चीस पैसे की टाफ़ी देना।''

हातिम हँसता हुआ अपने छोटे-छोटे ग्राहकों की माँगों को पूरा करता था, जो उसके सामानों को छूते रहते थे। पहले पैसा लेता फिर चीज़ देता था। फिर छुट्टा पैसे वापस लौटाता और अपनी विभिन्न जेबों में विभिन्न सिक्के भरकर शाम को घर जाता और सुबह ख़ाली जेब के साथ फिर लौट आता था।

मगर जब से आशिक़ हुआ है, गली के नुक्कड़ से हिलता नहीं है। सुबह सवेरा निकल जाता है। दोपहर को दीवार की छाया में खड़ा रहता और दूसरी गली की ओर झाँकता व ताकता रहता था। उधर ही लैला का घर था। शाम के घिरते वह उस मोहल्ले के इकलौते पेड़ के नीचे आकर खड़ा हो जाता था और आँखें बिछाए लैला

के आने की राह ताकता रहता। जब दोपहर में सूरज सर पर चमकने लगता और गली धूप से भर जाती तब वह बनिए की दुकान के सामने लगे छप्पर के नीचे जाकर खड़ा हो जाता था या फिर वह फुटपाथ पर बैठकर या बनिए की बेंच पर बैठकर खाना खा लेता था। अधिकतर उसका खाना नान संगक और बाटी, ख़ूब गला गोश्त व प्याज़ होता था। जो वह कपड़े में लपेटकर घर से लाता था। खाने के बाद पंचूरिया ज़बीहउल्लाह से एक कटोरा पानी माँगता। पूरा-का-पूरा पीकर ज़ोर से कहता हुस्सैन को सलाम यज़ीद पर लानत, फिर वहीं बेंच पर लम्बा-लम्बा लेट् जाता और दो-तीन घंटा ख़ूब जमकर सोता। कोई भी इस बीच उसके खौंचे को हाथ नहीं लगाता था और हातिम आराम से लैला के सपने देखने में मगन रहता था।

शाम को फिर वह दीवार की छाया में आकर खड़ा हो जाता था और खेलते लड़कों को देखता रहता। कभी गेंद उसकी तरफ़ आती तो लड़के चिल्ला उठते, ''हातिम शाट मारो, हातिम शाट मारो'' हातिम ख़ुशी-ख़ुशी प्लास्टिक की फ़ुटबाल के पीछे भागता, उसे उठाकर बहुत अनाड़ी अन्दाज़ से किक मारता जिसका नतीजा यह निकलता कि फ़ुटबाल नाली की गन्दगी में गिरता या किसी के घर में या फिर छत पर उछलकर पहुँच जाता था या फिर बेचारे आने-जाने वालों की कमर, पीठ, मुँह, सर पर जाकर लगता और क्रोध का एक उबाल सुनाई पड़ता, ''बेवकूफ़ कहाँ का, शॉट मारना नहीं जानता।'' सुनकर हातिम टूटे दिल से अपने खौंचे के पास लौट आता और बड़बड़ाता, ''मुझसे क्या मतलब—आना अबकी बार, स्वयं यहाँ से उठाने, समझे।''

लड़के थके, पसीने से भीगे जब लौटते तो हातिम के खौंचे के पास रुकते थे। हातिम सब-कुछ भूलकर उन्हें चीज़ें देने लगता, जिनके पास पैसा होता वह खाने में व्यस्त हो जाते और अन्य बेचारे मुँह ताकते। जब मुँह में पानी भर आता तो हातिम से कहते, ''हातिम, क़र्ज़ा दोगे?''

आँखों व होंठों से हँसी छलक पड़ती। मगर फ़ौरन हातिम जवाब देता, ''नहीं।''

फिर बच्चे ख़ुशामद करते, क्रोध दिखाते अन्त में कहते, ''तुमसे हज़ार दर्जा अच्छा ज़बीहउल्लाह पंचूरिया है, कम-से-कम क़र्ज़ा तो देता है।''

''तो जाओ ले लो उससे।''

बच्चे भी उठने लगते, ''तुमसे कौन माँगे?''

बच्चों की नाराज़गी उससे बर्दाश्त नहीं होती, फ़ौरन कहता—

''अच्छा कब वापस करोगे?''

''कल।''

''कल सुबह ही सुबह।''

''क़ुरआन की क़सम कल सुबह लौटा देंगे।'' लड़के उसे विश्वास दिलाते।

''ख़ैर, यह आख़िरी बार है जो क़र्ज़ दे रहा हूँ।''

सब देर-सबेर पैसा लौटाते थे। हातिम को भी जल्दी न थी। कभी-कभी लड़के कहते, ''हातिम, अपने बारे में बताओ?''

तब हातिम अपने बचपन के बारे में बताता। उसे कुछ याद नहीं वह किस शहर में कहाँ था? बस इतना याद है कि ज़लज़ले में उसके परिवार के लोग दबकर मर गए थे। केवल माँ बच गई थी। माँ के साथ ये दूसरे शहर आ गए। हातिम की माँ बताती है कि हातिम का पैर उस ज़लज़ले में टूट गया था, तभी अब तक लँगड़ाता है। वह कहती थी कि मेरा तो बस एक ही अरमान है कि हातिम का विवाह हो जाए और पोते का मुँह देख लूँ। अपने मकान मालिक, जिसका एक कमरा किराए पर लिए है, उसके बारे में बताती है कि वह आदमी शराबी है। तीन बीवियाँ हैं। उसकी ट्रकें चलती हैं। बीस-पच्चीस लड़के काम करते हैं। सब चोरी का माल लाते ले जाते हैं। उसके यहाँ तस्करी होती है।

हातिम का मन करता है कि लैला से बोले, मगर मौक़ा अब तक नहीं मिल पाया था। बस एक बार सलाम किया था, जिसके उत्तर में लैला ने हँसकर कहा था, ''सलाम ज़हरेमार।'' इसके हाथ-पैर काँपने लगे व बदन पसीने से तर हो गया था। बच्चे उसे छेड़ते, ''हातिम अपनी माँ का पैग़ाम लेकर भेजो, देरी काहे की, अब विवाह कर ही डालो।''

हातिम शरमाता हुआ अपने गन्दे नाख़ून की मैल साफ़ करता हुआ धीरे से बोलता, ''पहले मैं उससे ख़ुद कहकर देखता हूँ कि वह भी मुझे पसन्द करती है या नहीं?''

''अरे फिर कहो न उससे! सौ बार तुम्हारे सामने से गुज़रती है फिर तुमसे सौदा भी तो ख़रीदती है।''

''हाँ! मगर हिम्मत नहीं पड़ती है। पता नहीं मुझ कमबख़्त को क्या हो गया? अब की बार आई कुछ ख़रीदने तो साफ़ कह दूँगा कि मैं उसे कितना प्यार करता हूँ। पैग़ाम लेकर माँ को भेजना चाहता हूँ, मगर उसे देखते ही दिल धड़कने लगता है, गला सूख जाता है, घबराहट में चक्कर आने लगता है। हाथ-पैर काँपने लगते है, एकदम गूँगा हो जाता हूँ।''

लड़के सुनकर हँसने लगते वह भी हँसने लगता था। लड़के कहते, ''जब यह हाल है तो अच्छा है ख़त लिखो, अभी तक तुमने क्यों नहीं एक प्रेम पत्र लिख मारा... ?''

''मैं पढ़ा-लिखा कब हूँ?''

''हम तुम्हारे लिए लिखेंगे, यह कौन-सा बड़ा काम है?''

लैला अपने माँ-बाप, बहन-बहनोई और उनके बच्चे के साथ हशमत रश्दी के मकान में किराएदार थी, उसके पास एक छोटा-सा कमरा था। लैला का पिता एक हृष्ट-पुष्ट बूढ़ा था, जिसके बाल मेहँदी के रंग के और दाढ़ी घनी थी। वह मज़दूरी का काम करता था। घर-घर पुताई करने सुबह ही घर से निकल जाता था। रात को लौटता। लौटते ही कमरे में घुस तिरयाक के कश लेने लगता। फिर लैला की माँ से लड़ाई होती। गाली-गलौज, मार-पीट और इस सबसे थककर वह सो जाता, दूसरे दिन सुबह तक के लिए।

लैला की माँ, सकीना एक दुबली-पतली औरत थी। जिसकी भाषा लुरी थी और वह हमेशा कोसती, काटती, रोती-बिलखती रहती थी। कभी-कभी वह पति के साथ चादर ओढ़कर जाती घरों में। कपड़े धोती, लौटते समय ढेर-सा खाना लेकर शाम को थकी-हारी लौटती थी।

लैला की बहन बीमार थी। घर से निकलती नहीं थी। उसका पति कंडक्टर था जो सदा सफ़र में रहता, केवल हफ़्तों में एक-दो बार आता था। जब आता था ससुर के साथ नशा करता था और फिर यात्राओं के विवरण सुनाता।

अकबर बहन का बेटा था। जिसकी उम्र चार वर्ष थी। नंग-धड़ंग गली में खेलता रहता था। कभी-कभी लैला उसकी उँगली पकड़कर नानबाई या पंचूरिया की दुकान की ओर ले जाती थी।

माँ-बाप के बीच में झगड़ा लैला को लेकर होता था। पिता का कहना था, ''जवान लड़की क्यों बेकार में इस तरह से फिरती है, कहीं कुछ काम क्यों नहीं करती?''

लैला कहती, ''मैं किसी की ग़ुलामी नहीं करती।'' सुनकर पिता चीखता, गाली देता, लैला रोने बैठ जाती थी और इसी बात पर पिता ख़ूब जी भर कर लैला की ख़ातिर लात-घूसों से करता था।

माँ बीच-बचाव कहती हुई करती, ''इस घर का काम फिर कौन करता है? लैला क्या बेकार बैठी रहती है? क्यों दूसरे के घर ग़ुलामी करे? पैसे चाहिए तुम्हारे नशे के लिए न? दूसरों का ख़ून-पसीना यूँ धुएँ में उड़ाने के लिए यह सारी मारपीट होती है इस घर में। लड़की की कमाई खाना चाहते हो?'' इस बात पर पिता माँ पर टूट पड़ता अच्छी धुनाई करता और कहता, ''कमबख़्त, क्या मैं बैठकर खाता हूँ? सुबह से शाम तक कौन हड्डी तोड़ता है?''

थक-हारकर अन्त में ड्योढ़ी पर बैठ जाता और बड़े हलके मन से सिगरेट

जलाकर पीने लगता जैसे कुछ हुआ ही नहीं हो।

ऐसे समय में अकबर की हालत सबसे बुरी होती थी। वह डरकर रोने-काँपने लगता था।

उस दिन दोपहर में लैला अकबर के साथ हमामख़ाने से लौट रही थी। ओढ़ी चादर के अन्दर से अकबर की उँगली पकड़े थी। दूसरे हाथ से गन्दे कपड़े, साबुन, कंघी का थैला। गर्म हमाम से निकली तो यूँ पैदल चलने से पसीना आया, गाल लाल हो रहे थे, चेहरे पर निखार था जैसे फूल शबनम से धुलकर चमक उठा हो, एकदम तरोताज़ा महका-महका सुन्दर, लावण्यमय!

हातिम सुबह से दीवार की छाया में खड़ा प्रेम-पत्र को हाथ में लिए मरोड़ रहा था। पास से लैला गुज़री तो उसने सलाम किया। लैला ने हँसकर कहा, ''सलाम ज़हरमार''। सुनते ही हातिम को कँपकँपी सवार हो गई, जब उसे होश आया तब तक लैला दस क़दम आगे जा चुकी थी। इस बार जैसे भी होगा लैला को पत्र देकर रहूँगा। हातिम ने प्रण कर लिया था सो आगे बढ़ा।

लैला उसके आगे जा रही थी। गली के पास पहुँच गई थी। अकबर खाने की चीज़ के लिए ज़िद कर रहा था, ''हमें लेमनचूस लेना है।''

''यहाँ से नहीं लेना है'' लैला ने कहा, मगर अकबर मचलता रहा।

तभी हातिम ने लालीपाप आगे बढ़ाई जिसे अकबर ने ले लिया। लैला ने झपटकर लालीपाप ली और वापस देते हुए बोली, ''अरे पैसा नहीं है अभी।''

''कोई बात नहीं,'' हातिम ने कहा, ''पैसा नहीं चाहिए।''

''मुफ़्त क्यों?'' कहकर लैला ने पर्स खोला और पैसा उछालकर हातिम के तराज़ू में फेंका और अकबर से कहा, ''ठूँसो''।

जैसे ही वह चलने को हुई भरे गले से हातिम बोला, ''लैला ख़ानम!'' फिर ख़त को देता हुआ घबराइट से बोला, ''इस ख़त... को पढ़ें... आपको ख़ुदा... की क़सम... है।'' उसकी आँखों में इल्तिजा थी।

लैला ख़ामोशी से उसके लम्बे पतले, गन्दे हाथों के काले मैल भरे नाख़ूनों के बीच फँसे काग़ज के टुकड़े को देख रही थी। उसे हातिम की इतनी गन्दगी पर हैरत हो रही थी।

''लैला ख़ानम! आपको... माँ की जान की क़सम... इसे ले... ले... पढ़ें।''

लैला ने हाथ बढ़ाया और बोली, ''उफ! मैं तो पढ़ना नहीं जानती हूँ।''

सुनकर हातिम का बढ़ा हाथ ढीला पड़ गया। बड़ी निराशा से सर झुका लिया और लज्जित-सा अपने तराज़ू से खेलने लगा।

लैला ने अकबर का हाथ खींचा और आगे बढ़ गई। हातिम ने गर्दन उठाकर

लैला को जाते हुए देखा।

हातिम ने ज़मीन पर थूकते हुए कहा, ''यह भी न हुआ।''

लड़कों ने कहा, ''बस इतनी-सी बात से घबरा गए। क्या नहीं दे पाए?''

''कोई बात नहीं पत्र दे दो हम उसके लिए पढ़ देंगे।''

हातिम शाम को पेड़ के नीचे खड़ा था कि उसने देखा बिना चादर के खुले सर लैला घर के दरवाज़े पर खड़ी है और एक लड़का उसके लिए पत्र पढ़ रहा है। वह ध्यान से सुन रही है। यह देखकर हातिम के मन में लड्डू फूटने लगे। जब पत्र सुन लिया तो लैला ने लड़के से बातें कीं और फिर एक अदा भरी मुस्कान से हातिम को देखा और अन्दर चली गई। हातिम पर घड़ों नशा छा गया था।

जब तक लड़का हातिम के पास पहुँचता उसकी जान हलक़ तक पहुँच गई थी।

''क्या कहा? बताओ न! क्या कहा?''

लड़के ने कहा, ''अभी नहीं बता सकता हूँ पहले पत्र का उत्तर लिख डालूँ फिर बाद में।''

''बताओ न मैं मरा जा रहा हूँ।''

''अभी नहीं,'' लड़के ने टका-सा जवाब दे दिया, ''मैं नहीं बता सकता हूँ— पत्र लिखकर उसकी तरफ़ से तुम्हारे लिए पढ़ना है।'' लड़के नहर के क़रीब बैठकर पत्र का उत्तर लिखने में व्यस्त हो गए।

''उफ! यह कहाँ से प्रेम-पत्र हुआ? कहाँ से पता चलता है कि वह मुझे पसन्द करती है?'' हातिम ने झुँझलाकर कहा।

''कौन-सी दुनिया में तुम रहते हो? कभी हुआ है कि एक लड़की लड़के के लिए प्रेम-पत्र लिखे।''

''चलो प्रेम-पत्र न सही मगर मेरे प्रश्न का उत्तर तो देना चाहिए था। मैंने साफ़-साफ़ पूछा था कि मैं उसे प्यार करता हूँ और विवाह करना चाहता हूँ। उत्तर पूछा था कि वह क्या चाहती है?''

लड़के ने कहा, ''अरे मेरे भाई! देखो सुनो ध्यान से मैं क्या पढ़ रहा हूँ। वह उत्तर लिखवाती है कि ''यदि तुम मुझे चाहते हो मुझसे प्यार करते हो, मुझसे विवाह करना चाहते हो तो फिर अपनी माँ को पैग़ाम लेकर भेजो' समझे कुछ? आया भेजे में कुछ?''

हातिम शीघ्रता से घर पहुँचा और माँ को बताया, यह तय पाया कि कल रात को हातिम की माँ और मकान मालिक की पत्नी लैला के घर पैग़ाम लेकर जाएँगी। हातिम ने बार-बार माँ से कहा कि वह कल हमामख़ाने जाए, नहाने के बाद बढ़िया कपड़े पहनकर लैला के घर जाए।

लैला ने इस बात की ख़बर उसी दिन माँ को दे दी थी, जब रात को पिता घर आकर नशा आरम्भ करने वाला था। माँ ने इस बात का ज़िक्र किया कि एक कामकाजी लड़का इसी मोहल्ले का लैला का हाथ माँग रहा है।

हातिम अकेला कमरे में बैठा था। माँ मकान-मालकिन के साथ लैला के घर गई हुई थी। नीचे मकान-मालिक नौकरों से उलझ रहा था। हातिम का बहुत मन कर रहा था कि वह भी साथ जाए मगर यह कहकर उसे मना कर दिया गया कि वहाँ मर्दों का क्या काम है?

हातिम ने सिगरेट अभी तक नहीं पी थी, मगर आज की रात उसकी यह तीसरी सिगरेट थी, जो उसके हाथों में दबी हुई थी। क्या तय होता है? निकाह कब होगा? मेहर कितना तय होता है? विवाह का ख़र्च कितना होगा? अपने जमा किए धन का ख़्याल आया। एक हज़ार में होती है बढ़िया शादी, सारे मोहल्ले के दुकानदार लड़कों की दावत की जाए तब। यह घर भी तो ठीक नहीं है। शादी के बाद एक अन्य घर में जाना पड़ेगा जो इससे बड़ा होगा ताकि कोई दूसरा न रहे। फिर मशहद घूमने जाएँगे? नहीं, वह लैला को अकेले अपने साथ ले जाएगा। अगर माँ ने कहा साथ चलने को तो तब बहाना कर देंगे कि अगले साल वह दर्शन को मशहद जाएगी। अकेले में लैला को घुमाऊँगा, नाज़ उठाऊँगा, प्यार करूँगा।

हातिम का दिल धड़कने लगा। हाथ-पैर काँपने लगे, गला सूखने लगा। लैला गर्भवती हो गई बच्चा पैदा हुआ। खौंचा एक बड़ी फल की दुकान में तब्दील हो गया। वह फ़िल्म जा रहे हैं। घूमने जा रहे हैं, और दादी पोतों के आगे-पीछे घूम रहे हैं, जीवन सुखमय है। अधमुँदी आँखें सपने के नशे से भारी होने लगीं।

लैला आँगन में बैठी हुई थी। आस-पास पड़ोस की लड़कियाँ बैठी हुई थीं लैला ने हातिम की माँ व अन्य मेहमानों के लिए चाय पेश की थी। जब चाय का फ़िनजान दोनों ने उठाया तो लैला को गौर से देखा, फिर खुसुर-फुसुर करने लगी। लैला लाज से गड़ने लगी थी। घबराकर कमरे से बाहर निकल आई। अब लड़कियों के बीच बैठी उनकी गप्पें सुन रही थी।

अन्दर कमरे में सब लोग मौजूद थे। पिता तिरयाक पी रहे थे, गावतकिया से लगे हुए। बहन भी आज बिस्तर से उठकर बड़े सलीक़े से चादर ओढ़कर बैठी थी। माँ सबके लिए चाय उँड़ेल रही थी। अकबर एक तरफ़ खेल रहा था।

लैला ने सोचा यदि शादी हुई तो? वह लाल पड़ गई। अन्दर तक काँप गई। कल तक, जब तक हातिम ने पत्र नहीं दिया था, उसे एक छोटे लड़के की नज़र से देखती थी। मगर अब उसके दिमाग़ में एक पूरे मर्द की तस्वीर बन रही थी जो उससे विवाह करना चाहता है। और वह मर्द उसे इस खँडहर के बाहर निकालकर ले

जाएगा और वे साथ-साथ रहने लगेंगे। कभी-कभी बच्चों का बाप क्रोधित हो उठेगा और कभी-कभी मार भी बैठेगा, यह कौन जाने? मगर पिता है, बुरी तरह नहीं मारेगा या शायद कभी हाथ न उठाए? प्यार-ही-प्यार करे, क्या पता?

वह दुबला-पतला मारने-पीटने वाला इन्सान नहीं लगता है। हातिम की छवि लैला की आँखों में कौंध गई।

अन्दर कमरे से तेज़ आवाज़ आने लगी। लैला के कान खड़े हो गए। पिता कह रहे थे, 'नहीं ख़ानम, हमें लड़की का विवाह नहीं करना है।'

लैला का दिल धक से रह गया। तेज़ी से नाख़ूनों को दाँतों से कुतरना आरम्भ कर दिया। लड़कियाँ, औरतें फुसफुसाने लगीं। किसी एक औरत की आवाज़ उभरी, ''सचमुच आप शादी का पैग़ाम लेकर आई थीं?''

पिता की आवाज़ उभरी, ''क्या आपने समझा था कि लड़की को हम सड़क से उठाकर लाए हैं जो फ़क़ीरों और भिखमंगों को उठाकर दे दें।''

इन आवाज़ों के बीच माँ की आवाज़ उभरी, ''ठीक है मत करो शादी उसकी, अचार डालो लड़की का, तुम स्वयं क्या हो एक मामूली मज़दूर... बैठे रहो शहज़ादे के इन्तज़ार में और जवान लड़की बिठाकर रखो, कल कुछ हुआ तो समझ लेना मेरी ग़लती नहीं होगी, ज़माना ख़राब है।''

लैला रोने बैठ गई।

''जो भी हो आपको हम लड़की नहीं देंगे, कोई ज़ोर-ज़बरदस्ती नहीं है।'' बाप का दो टूक फ़ैसला था।

सारी लड़कियाँ कमरे के पास सिमट आई थीं। अन्दर झाँकने की कोशिश कर रही थीं। बड़बड़ाती औरतें बाहर आईं और चप्पल पहनने लगीं।

''वाह, वाह, वाह क्या लोग हैं। इनके पास तो कुत्ते भी न आएँ। चलो बहन चलते हैं। कैसा लड़के के कहने में आकर यहाँ आ गए। यह कोई इन्सानों का घर है? हमने अपने को अकारण हलका किया। अक़्ल पर पत्थर पड़ गए थे जो यहाँ आए।''

''स्वागत है आपका! मगर आपकी उम्मीदें जाएँ जहन्नुम में, लड़की को पाँच सौ में उठाकर दे दें आख़िर क्यों? क्या मुसीबत पड़ी है हमारे ऊपर? क्या ख़ुशी मिलेगी हमें ऐसी शादी करने से?'' बाप का पारा सातवें आसमान पर चढ़ गया था। उनके जाने के बाद घर में गहरा सन्नाटा छा गया जैसे किसी की मौत की ख़बर सुनी है सबने! केवल लैला के रोने की आवाज़ ख़ामोशी में उभर रही थी।

यकायक पति उठा और लगा लात-घूसों से लैला की पिटाई करने, ''यह हरकत इसी कमीनी ज़लील की है जो सुबह से उठकर गली के चक्कर लगाती है,

तभी आज यह हुआ है। ख़बरदार! जो कल से गली में निकली... चुपचाप काम पर जाना वरना इस हरामख़ोरी का मज़ा चखाऊँगा।''

हमेशा की तरह आज भी हातिम दीवार के साये में खड़ा था, सामने खौंचा था। तभी सामने से चादर ओढ़े लैला गुज़री, आँखें फूली हुई थीं। नाक लाल हो रही थी। एक पैर नीला हो रहा था और फूल गया था।

हातिम ने कहा, ''सलाम लै...''

जवाब देने के बजाय लैला तेज़ी से निकल गई, उसने एक नज़र भी हातिम पर नहीं डाली।

लैला नानबाई के यहाँ से रोटी लेने गई थी। इस बीच में लड़के जमा हो गए थे और सर झुकाकर छोटे-छोटे कंकड़ उठाकर सामने कीचड़ में फेंक रहे थे।

लैला दोबारा लौटी तो हातिम बोला, ''सलाम...''

लैला पल भर को रुकी, कटाक्ष भरी जलती नज़रों से हातिम को घूरा और तेज़ी से आगे बढ़ गई। हातिम घबराया-सा किंकर्तव्यविमूढ़ खड़ा रह गया।

लड़कों ने कहा, ''बैठो हातिम।''

हातिम बैठ गया। एक लड़का दौड़ा गया और एक पैकेट सिगरेट ख़रीद लाया। हातिम ने तेज़ी से उसे जलाया और कश-पर-कश खींचने लगा।

''फ़िक्र न करो हातिम, मगन रहो सब ठीक हो जाएगा।''

हातिम उसी तरह घबराया आँखें फाड़े सिगरेट का धुआँ निकाले जा रहा था जैसे वह कहीं और हो।

सामने से लैला का पिता हाथ में पुताई की बाल्टी लिए आता नज़र आया और सकीना चादर ओढ़े शौहर के पीछे-पीछे आ रही थी। थोड़ी देर वह वहाँ रुके फिर पेड़ के नीचे आकर खड़े हो गए। फिर सकीना ने हातिम की तरफ़ इशारा किया, पिता ने बाल्टी को ज़मीन पर रख दिया। सामने हातिम को घेरे लड़के बैठे थे। उन्हें आते देखा तो खड़े हो गए और तेज़ी से बोले, ''हातिम, हातिम उठो, चलो देखो वह आ रहा है लैला का पिता आ रहा है।''

लैला का पिता समीप पहुँचा, लड़के दूर से हातिम को इशारा कर रहे थे, ''हातिम, हातिम उठ जाओ! भाग जाओ!'' मगर हातिम वैसा ही बैठा सिगरेट का धुएँ निकालता रहा।

''चलो खड़े हो जाओ और उठाओ अपना यह खौंचा यहाँ से।''

हातिम ने सर उठाया और चकराकर सामने देखने लगा।

''क्या यह जगह तुमने ख़रीद ली है?'' लैला के पिता की आँखों में क्रोध का शोला लपका और मूँछें फड़कने लगीं।

''उठो! सुन नहीं रहे हो, सामान उठाओ और यहाँ से दफ़ा हो।''

काँपते हुए बदन से ठीक पिता के सामने हातिम खड़ा हुआ और बोला, ''नहीं जाता मैं!''

''नहीं जाओगे तुम?''

''नहीं!''

एक ही झापड़ में वह नीचे धरती पर लोटने लगा। लड़के इधर-उधर भागने-छुपने लगे। हातिम उठना चाहता था मगर पिता ने एक ज़ोर की लात जमाई। गाड़ी उलट गई, सारा सामान बिखर गया। हातिम ने रोना आरम्भ कर दिया और उसके पिता की गर्दन को पकड़ने की कोशिश करने लगा। तभी दूसरा ज़ोरदार झापड़ पड़ा। वह ज़मीन पर गिर पड़ा। आसपास के लोग जमा हो गए। लैला का पिता अब लात-घूसों से बुरी तरह हातिम को मार रहा था। हातिम रोता-चीखता गाली बक रहा था।

ज़बीहउल्लाह पंचूरिया ने लपककर लैला के पिता का हाथ पकड़ लिया, ''अजीब मुसलमान हो, मर्द होकर इस कमज़ोर पर हाथ उठाते हो।'' उसकी हिम्मत से सब आगे बढ़ आए। लैला का पिता जो लाल अंगारा हो रहा था और पसीने से डूबा हुआ था, लोगों से अपने हाथ को छुड़ा रहा था ताकि हातिम को फिर मारे। उसके मुँह से गन्दी गालियों का आबशार फूट रहा था, मगर लोग ज़बरदस्ती उसे इस रणक्षेत्र से बाहर निकाल लाए। थोड़ी देर वह रुका, जब देखा मोहल्ले वाले ख़ामोश रहेंगे तो वह आगे बढ़ा और पेड़ के नीचे से बाल्टी उठाकर आगे चलने लगा। सकीना भी चादर में लिपटी अपने पति के पीछे-पीछे हो ली।

भीड़ छँट गई।

घायल हातिम ज़मीन पर बेबस पड़ा पेचताब खा रहा था। गाली बक रहा था, साथ ही रो भी रहा था। उसके खौंचे की गाड़ी का एक पहिया टूट गया था। चीज़ें बिखरी हुई थीं और उसके बीच भीड़ से घिरा वह धरती पर लोट रहा था।

लड़के धीरे-धीरे करके पास आने लगे और बिखरी चीज़ों को जमा करने लगे। गाड़ी को सीधा किया, जिसका चूल-चूल हिल गया था और एक पहिया टूटकर दूर जाकर गिर गया था।

अनाम

समद बेहरंगी

पत्नी ने एक छोटे कटोरे में दाल, थोड़ी-सी चटनी और एक टुकड़ा रोटी पति के आगे रखते हुए कहा, ''लो ठूँसो, इसको भी मैंने कितनी कठिनाई से पकाया है।''

पति सोचने लगा! फिर वह सारा धन जो मैंने सुबह ही इसको दिया था उसका क्या हुआ?

फिर उसने आगे सोचा, भोर से लेकर संध्या तक मैं कोल्हू के बैल की तरह काम में जुता रहता हूँ। बदले में मिलता क्या है, केवल एक टुकड़ा रोटी और एक कटोरी दाल? ठीक है।

पत्नी पति के पास खड़ी क्रोध में बड़बड़ाती अपने को कोसती बुरा-भला कहती रही मगर पति शान्त रहा, ज़रा भी विचलित न हुआ। यह देखकर वह जूठे बर्तन उठाकर रसोई में चली गई। वहाँ जाकर उसने चूल्हे पर चढ़ी खीर को चखा कि कहीं मिठास कम तो नहीं है। दूसरी तरफ़ मुर्ग़ पुलाव जो पतीली में सनसना रहा था, उसे इधर-उधर किया। कद्दू को सेनी में सजाया। मज़ेदार व्यंजनों से उसने बड़ी बढ़िया दावत की तैयारी कर ली। फिर लौटकर पति के पास आई जो एक कटोरी दाल और एक टुकड़ा, रोटी खाकर बैठा ऊँघ रहा था।

पत्नी बोली, ''मुझे एक बड़ी देगची चाहिए। जल्दी से उठो और बाज़ार से जाकर ले आओ।''

पति दोपहर के खाने के बाद एक मीठी नींद के ख़ुमार में डूब चुका था, झुँझला गया। बोला, ''अभी तो नहीं जाऊँगा। एक घंटे बाद जाऊँगा। इन सारी देगचियों का तुम्हें करना क्या है? रोज़ देगची हर हफ़्ते नई देगची?''

पत्नी ने कोई उत्तर नहीं दिया। कुत्ते के भौंकने से उसने गली में खुलने वाली खिड़की से नीचे झाँका और किसी से कहा, ''थोड़ा ठहरो! नींद के ख़ुमार में अपमानित बैठा है। भेजती हूँ काली दाल ख़रीदने के लिए। ख़बर दूँगी'' फिर खिड़की के पट बन्द करती त्योरी पर बल डालती हुई बोली, ''ख़ुदा सत्यानाश करे बुरे पड़ोसियों का।'' पत्नी के इस कहने पर भी पति ने कोई प्रश्न नहीं किया न कहा कि अच्छा उत्तर दिया है। नींद का ख़ुमार जब कम हुआ और पति चलने को तैयार

हुआ तो उसने सोचा कि पूछे वह कौन था जिससे पत्नी बात कर रही थी, ताकि बातों-बातों में देगची की समस्या दब जाए और वह आराम से सो सके। तभी पत्नी ने कहा, ''बैठे हुए हो सुना नहीं क्या? अरे मुझे देगची चाहिए देगची।''

पति ने थके अन्दाज़ में कहा, ''सुन लिया भाई।''

पत्नी ने खूँटी पर टँगे कोट को उतारा। उसकी जेब में हाथ डालकर चाबी निकालते हुए कहा, ''मैंने चाबी निकाल ली है। जब लौटो तो दरवाज़ा खटखटा देना। मैं उठकर खोल दूँगी। अब मैं सोने जा रही हूँ।'' इतना कहकर दूसरे कमरे में चली गई जहाँ पर शृंगार का सामान रखा हुआ था। कपड़े उतारकर सारे बदन पर इत्र मला फिर बढ़िया कपड़े पहने, कंघी की। चेहरे पर पाउडर सुर्खी लगाई संक्षेप में जब तक पति बाहर निकला वह साज-शृंगार करके दुल्हन बन चुकी थी। कमरे से बाहर निकली और खिड़की के पट खोल दिए। गली के मोड़ पर पति एक सुन्दर सुडौल लड़के से टकराया। चूँकि अभी तक नींद के असर में था, सो अपने जूते से लड़के का जूता दबाया जिसके बदले में गाली सुनी।

''अरे ओ बेडौल! आँखें खोलकर चल।''

बर्तनों का बाज़ार शहर के दूसरे कोने में था। वहाँ तक पहुँचने का मतलब एक घंटा चाहिए था। पहुँचते ही पहले दुकानदार से पूछा, 'मुझे मेरी पत्नी ने देगची ख़रीदने को भेजा है अगर हो तो दे दो।'

डेगचीवाला खिलखिलाकर हँस पड़ा। जब हँसी रुकी तो अपने पड़ोसी दुकानदार को पुकारकर बोला, ''ग़ज़नफ़र आग़ा। फिर वह पत्नी के कहने से आ गया है देगची ख़रीदने हा-हा-हा-हा।''

वह भी ठहाका मारकर हँस पड़ा। पड़ोसी दुकानदार से उसने वही बात दोहराई। इस तरह से बाज़ार की छत कहकहों के शोर से गिरने वाली हो गई।

'सुनो! अब बुद्धू को फिर उसकी पत्नी ने भेजा है, हा-हा-हा।'

सय्यद काज़िम ने दो देगची पति को दिखाई। हँसी के कारण वह हाथ से फिसल गई और हँसी की आवाज़ में उनकी खनखनाहट दब गई। सारे दुकानदार पति के चारों तरफ़ जमा हो गए। उसे पागल और बेवक़ूफ़ कहते हुए मज़ाक उड़ाने लगे। अन्त में दो रुपए की एक देगची उसके हाथ बेचकर उसे घर भेज दिया।

घर लौटने में फिर एक घंटा लगा। घर पहुँचकर उसने दरवाज़ा खटखटाया, खुला नहीं। फिर खटखटाया, फिर भी नहीं खुला। उसका दिल चाहा कि ज़ोर से एक लात दरवाज़े पर मारे। जैसे ही उसने दरवाज़े को धक्का दिया एक ईंट ऊपर से उसके सर पर आकर गिरी। उसने ख़ामोशी से पीड़ा पी ली। सर पर हाथ फेरा। लाल ख़ून से भरा हाथ देखकर केवल एक कटु मुस्कान उसके मुख से उभरी। इस समय

ऊपर की खिड़की खुली और पत्नी ने पूछा, ''डेगची ख़रीद लाए?''

पति ने जवाब दिया, ''खरीद लाया हूँ?''

पत्नी बोली, ''अच्छा! क्या यह भी पूछकर आए हो कि इसमें कितना नमक डालूँ।''

पति ने यह दुकानदार से नहीं पूछा था। इससे पहले पत्नी ने कभी भी उससे ऐसा प्रश्न नहीं पूछा था। हमेशा देगची ख़रीदता था और घर चला आता था। यदि वह पूछ भी लेता तो पत्नी कोई नया प्रश्न पूछकर उसे हैरान करती। जैसे कि क्या तुम पूछकर आए हो कि इसमें कितना पानी डालूँ? या फिर उसमें दाल की कितनी मात्रा आएगी? वग़ैरह-वग़ैरह।

यही कारण था कि उसने कभी कुछ नहीं पूछा था। इस समय पत्नी ने खिड़की से फिर डाँट लगाई, ''तुम पर छत गिरे। हज़ार बार तुमसे कहा है कि नमक के बारे में पूछकर आया करो? जल्दी जाओ ओर पूछकर आओ, अगर नहीं पूछकर आए तो दरवाज़ा खुलेगा भी नहीं। जो गुज़र गया सो गुज़र गया, मगर इस बार तुम्हें क्षमा नहीं करूँगी। मैं सच कह रही हूँ वरना प्रलय तक दरवाज़े के पीछे खड़े रहना।''

पति ने देखा सर से बहता ख़ून नाक की नोक से टपकने लगा है, पत्नी की दहाड़ भी उसने सुनी। साथ ही किसी की फूलती साँसों की आवाज़ भी सुनी।

पत्नी ने फिर फटकार बताई, ''क्यों खड़े हो? कहा नहीं—'' बात अधूरी रह गई। पत्नी को किसी ने पीछे से घसीटा। मर्दाने हाथों ने खिड़की के पट बन्द किए। बेचारा पति थका-हारा दोबारा बाज़ार लौटा और दुकानदार से पूछा, ''इस देगची में कितना नमक डालना है?''

दुकानदार ने पति के सर पर से बहते ख़ून को देखकर उँगली से छुआ। वह गर्म और गीला लगा। बोला, ''लगता है अभी ज़िन्दा हो तुम?''

दुकानदार ने पड़ोसी दुकानदार को पुकाराकर कहा, ''ग़ज़नफ़र, देखो वह फिर आ गया, इस बार नमक का अन्दाज़ा पूछ रहा है? हा-हा-हा-हा''

सारे दुकानदार फिर पति के चारों तरफ़ जमा हो गए और लगे मज़ाक करने। जब उनका दिल भर गया तो बोले, ''अपनी पत्नी से कहना, आधी मुट्ठी से ज़्यादा या एक मुट्ठी से कुछ कम नमक डाले।''

पति चल पड़ा। यह बात भूल न जाए, इसलिए दोहराता गया, ''आधी मुट्ठी से अधिक एक मुट्ठी से कम।''

एक खलिहान में गेहूँ साफ़ हो रहा था। वे समझे पति उन्हें चिढ़ा रहा है। वह उस पर टूट पड़े। मार-मारकर कचूमर बना दिया। फिर बोला, ''अब यह कभी न दोहराना समझे?''

पति ने पूछा, ''फिर क्या कहूँ?''

वे बोले, ''एक से हज़ार हो, ख़ुदा बरकत दे।''

पति वही वाक्य दोहराता हुआ चलने लगा। पास से एक मृत को उठाए लोग क़ब्रिस्तान जा रहे थे। सुनकर ख़फ़ा हो गए और पति को इतना मारा कि उसका भुर्ता बन गया। पति ने सोचा यह सब पत्नी के कारण हुआ है। घर पहुँचूँ तो उससे बदला लूँ। जब चलने को हुआ तो लोगों ने कहा, ''अब यह न कहना समझे।''

पति ने पूछा, ''फिर क्या कहूँ?''

वे बोले, ''अन्त यही है, देखा, आँखें अब बन्द हैं?''

कहता हुआ पति आगे बढ़ा—रास्ते में एक बारात मिली। उसका यह वाक्य सुनकर वे आग-बबूला हो गए। लगे उसे धोबी की लादी की तरह पीटने। पीटने के बाद बोले, ''फिर यह कभी न दोहराना समझे?''

पति ने पूछा, ''फिर क्या कहूँ?''

वे बोले, ''सीटी बजाओ, गाना गाओ, हँसो, उछलने दो, नाचो, इतना प्रसन्न दिखो कि लोग जल जाएँ। यूँ दुखी चेहरा मत बनाओ बल्कि हैट उछालते हुए प्रसन्नता के फूल बिखराओ।''

पति ने होंठों का ख़ून पोंछा। दाँत जो मार खाने से ढीले हो गए थे, उन्हें उखाड़कर दूर फेंका और बोला, ''ठीक है, समझ गया हूँ।''

इसके बाद वह आगे बढ़ा। सर से ख़ून बहकर मुँह से बहते ख़ून से मिल रहा था मगर वह प्रसन्नता से मुस्करा रहा था, टोपी उछालता, गाना गाता, नाचता-कूदता आगे बढ़ रहा था। अब वह सीटी बजाता तो ख़ून की छोटी-सी कुल्ली बाहर निकलती। जब हँसता तो आँखों से आँसू निकलने आरम्भ हो जाते थे।

रास्ते में एक कबूतरबाज़ पंक्ति से कबूतरों को बिठाकर दाना दे रहा था ताकि वह इसके बाद उड़कर पड़ोसी के कबूतरों से उड़ान में बाज़ी आगे ले जाएँ। इसी समय पति की टोपी जो उछली तो कबूतर फड़फड़ाकर उड़े, जिससे कबूतरबाज़ की आँखों में ख़ून उतर आया। वह अपने कोठे से नीचे उतरा और जी भरकर पति की पिटाई की। बेचारा पति बोला, ''यह सब मैं पत्नी की ख़ातिर कर रहा हूँ।'' दिल-ही-दिल में पत्नी को बुरा भला कहता हुआ उठा और चलने को हुआ, तभी कबूतरबाज़ ने कहा, ''अब यह ग़लती दोबारा मत करना।''

पति बोला, ''फिर क्या करूँ?''

कबूतरबाज़ बोला, ''कुछ न कहो, बस कमर झुकाए-झुकाए, टोपी को चिपकाए, साँस रोके, ओवर कोट में अपने को छुपाए आहिस्ता-आहिस्ता दीवार से चिपककर जाओ, साँस भी मत लेना, समझे।''

पति बोला, ''मैं जानता हूँ, ख़ूब अच्छी तरह से जानता हूँ। चुपके-चुपके दीवार से चिपकते ओवर कोट में अपने को छुपाए जाना है, यहाँ तक कि साँस भी नहीं लेना है।'' कमर झुकाए वह चल पड़ा इस बार कहता गया, ''सभी कुछ मेरी पत्नी के कारण है।'' जौहरी की दुकान के पास से गुज़रा जहाँ लोग जमा थे और सुबह हुई चोरी का पता लगाना चाह रहे थे।

इस हालत में जो उन्होंने इस आदमी को देखा, समझे यह चोर है। पति पर टूट पड़े और जी भरकर उसकी ठुकाई की। ख़ून उसकी नाक से बह निकला। अपनी पत्नी को गाली देता हुआ ज़मीन से उठा ताकि आगे चल पड़े तभी वे बोले, ''इस तरह से फिर मत चलना वरना लोग चोर समझेंगे।'' उन्होंने जब उसकी तलाशी ली तो उन्हें लगा वह पागल है।

पति ने पूछा, ''फिर क्या करूँ?''

वे बोले, ''सर को ऊपर उठाओ, कमर को सीधा करो, फिर चलो।''

पति सर ऊँचा करके, कमर सीधी करके चलने लगा। इस हालत में उसे बड़ा आनन्द आने लगा। वर्षों की अभिलाषा पूरी हुई है। यही तो वह चाहता था वर्षों से, अब उसे प्राप्त हुई है। झुककर चलते-चलते मैं तो थक गया था।

आगे जाकर कुछ घरों की सीढ़ियाँ घुमावदार मिलीं। उधर से गुज़रने वाले सब झुककर गुज़र रहे थे, मगर पति नहीं चाहता था कि वर्षों बाद मिली इस आनन्दमय स्थिति को यूँ समाप्त कर दे। बिना झुके आगे बढ़ा। सर धड़ से टकराया, देखने वालों ने उसे पागल समझा।

किसी तरह हाँफता-काँपता ख़ून से नहाया वह घर पहुँचा। दरवाज़ा खटखटाया, न खुला। ज़ोर से लात मारी। एक और ईंट ऊपर से उसके सर पर गिरी और उसका सर अधिक घायल हो गया। फिर भी उसके मुँह से आह न निकली। लाल ख़ून बूँद-बूँद करके नाक की नोक से टपक रहा था। उसने एक लात फिर दरवाज़े पर मारी। मगर इस बार सर पर हाथ रख कर, ताकि ऊपर से ईंट उसके सर पर न गिरकर हाथ पर गिरे। वह चाहता था इस तरह लात मार अपनी पत्नी का तिरस्कार करे। ईंट गिरी और खिड़की खुली। आवाज़ आई, ''कौन है?''

पति बोला, ''मैं हूँ।''

पत्नी ने कहा, ''मैं तुम्हें नहीं पहचानती हूँ।''

पति बोला, ''तुम्हारा भाई हूँ।''

पत्नी ने कहा, ''ठीक है, मगर तुम्हारा नाम क्या है?''

वास्तव में उसका नाम क्या है? इस बिन्दु पर तो उसने कभी सोचा ही न था। न ही इससे पहले ऐसा बहाना पत्नी ने बनाया था? इस विचार में डूब गया। पहले

कैसे उसे पुकारा जाता था? किस नाम से पुकारा जाता था? जब वह सुन्दर सुडौल नौजवान से टकराया था तो उसने उसे 'बेडौल' कहा था। तो बस ठीक उसका नाम 'बेडौल' हो सकता था?

अगर यह नाम ठीक है तो बर्तन वाले बाज़ार में उसे सब 'पागल' क्यों कह रहे थे? क्यों उसे सीढ़ी के पास से गुज़रते हुए दीवाना कह रहे थे। वह पूर्ण रूप से अपना नाम भूल चुका था। काश ऐसा होता तो कितना अच्छा होता कि वह वास्तव में दीवाना होता। तब वह जो चाहता बक तो सकता था, मगर ऐसा क्यों होगा? जानता है कि एक दिन उसका भी कोई नाम था।

पत्नी ने फिर पूछा, ''क्यों, अपना नाम नहीं बताया तुमने? जब तक बताओगे नहीं, दरवाज़ा नहीं खुलेगा।''

एक राहगीर ने कहा, ''अरे तुम्हारा नाम पूछा जा रहा है, बताओ न? कह दो बहरूज़ इफ़्तिख़ार कुछ भी बता दो।''

पति ने मुड़कर भी उस राहगीर को नहीं देखा।

पत्नी ने कहा, ''क्या है?''

पति बोला, ''मैं भूल चुका हूँ। जाऊँ जाकर पूछ आता हूँ।'' मुड़ा कि चले, तभी उसके कानों में हँसी की आवाज़ टकराई। सामने उसके चारों तरफ़ देगची बेचने वाले दुकानदार खड़े हँस रहे थे। पति ने अपने हाथ को देखा, उसमें देगची थी और देगची में ख़ून भरा था। उसने आव देखा न ताव, देगची को खिड़की की ओर फेंका। खिड़की से टकराकर देगची वापस उसके सर से आकर टकराई। हँसी की आवाज़ें तेज़ हो गईं।

होंठों-ही-होंठों में मर्द बुदबुलाया, ''ठीक है।'' और आगे चलने लगा।

झुटपुटे का समय था। पति कूड़े के ढेर के समीप बैठा हर आने-जाने वाले से अपना नाम पूछ रहा था।

उसे एकाएक अनुभव हुआ कि जो ज़ंजीर उसकी नाक में बँधी है वह आकाश से छोड़ी गई है और ये सारे सितारे उसके हाथ के चारों ओर ज्वाला से सुलग रहे हैं।

व्यथा का असीमित सागर

शहरज़ाद

जब बाबा की ज़िन्दगी का कोई भी निशान बाक़ी न बचा था, तब माँ ने अफ़साना को जन्म दिया था।

उस दिन भी सदा की तरह स्कूल से घर लौट रहा था और बाबा पाकेटी से 'किहान बच्चेहा' पत्रिका आधे पैसे पर इस शर्त पर किराए पर ली थी कि हर हालत में पढ़कर दूसरे दिन सुबह लौटा दूँगा। बाबा पाकेटी रद्दीवाला था, जो पुराने अख़बार व पत्रिकाएँ ख़रीदता था और फिर उससे लिफ़ाफ़े बना दुकानदारों के हाथ बेंच देता था। दरअसल 'किहान बच्चेहा' की नई प्रति पूरे पाँच रुपये की मिलती थी। जो नसरीन के अलावा कोई ख़रीद नहीं पाता था और वह पढ़ना तो दूर रहा किसी को हाथ तक लगाने नहीं देती थी। बाबा पाकेटी मेरे अनुरोध को मान गया था कि मैं रात भर यह बाल पत्रिका अपने पास रख अगली सुबह को उसे लौटा दूँ।

सिंदबाद की चित्रकथा में डूबा हुआ मैं उत्सुकता से भरा हुआ था कि देखो आगे क्या होता है। उसी व्याकुलता में डूबा आसपास की हर चीज़ से बिलकुल बेख़बर हो गया था। आगे जाकर क़ासिम आग़ा से टकरा गया। क़ासिम मोहल्ले का अंधा फ़क़ीर था। देह से ऐसी बुरी बास उठती थी कि कोई दस फर्लांग दूर से गुज़रना पसन्द न करे और मैं पूरा-का-पूरा इस गन्दगी की पोट से टकरा गया था। टूटी लाठी मेरी कमर पर मारकर बोला, ''ग़लीज़ कुत्ते के बाप! मदद करना तो अलग रहा। ऊपर से अंधे को धक्के मार रहा है। कुत्ते के पिल्ले, रंडी की औलाद! अगर आँखें होतीं तो अभी मज़ा चखा देता।''

''क़ासिम आग़ा, मेरी ग़लती है।'' मैं नर्म पड़कर चिरौरी करते हुए बोला, ''क़ासिम आग़ा, मैं भी क्या करूँ, घर पहुँचते-पहुँचते देर हो जाएगी। फिर होम वर्क करते रात हो जाएगी। यह पत्रिका कब ख़त्म करूँगा, सुबह-सवेरे लौटानी भी है, इसी वायदे पर बाबा पाकेटी ने मुझे आधे पैसे पर लाने दी है।''

''चुप रह! कैसी लम्बी ज़बान पाई है। कम बोल कम! अगर सच बोल रहा है तो निकाल फटाफट कुछ अपनी जेब से और डाल मेरी झोली में।''

अभी आख़िरी पन्ना पढ़ना बाक़ी रह गया था कि मैं घर की गली के नुक्कड़ पर पहुँच गया। बाक़र की बीवी, मेरी सहपाठी सुरैया अपने घर की खिड़की से झाँककर बोली, ''तुम्हारे लिए टॉफ़ी मैंने दरवाज़े की आड़ में रख दी है, उठा लो और 'किहान बच्चेहा' ऊपर फेंक दो, मैं एक घंटे में पढ़कर वापस कर दूँगी। जल्दी करो वरना किसी ने देख लिया तो बाक़र से कह देगा।'' सुरैया पिछले साल तक मेरे साथ पढ़ती थी। अब बाक़र जिगर बेचने वाले के साथ उसका निकाह हो गया है। पहले टॉफ़ी उठाकर जेब में रखी, फिर पत्रिका को मोड़कर खिड़की की तरफ़ उछाल दिया, ''शाम तक लौटा देना, अभी नाहीद को भी देनी है।''

पत्रिका लपककर सुरैया बोली, ''अब तुम जल्दी से घर भागो। युसूफ़ सुबह से ख़ून उगल रहा है। तुम्हारी माँ प्रसव पीड़ा से बेचैन है। तुम तो जानते हो, बाक़र ने मेरे घर से निकलने पर पाबंदी लगाई है, वरना मैं ज़रूर जाती तुम्हारे घर.... और ऐसे मौक़े पर मदद करती.... मगर मजबूर हूँ।''

यूसुफ़! यूसुफ़ ख़ून..... ?

घर की गली, काली छींटदार चादरों से भरी हुई थी। मगर यह भीड़ तो सामान्यत: सुबह के वक़्त होती थी, जब अहमद आग़ा ताज़ा सब्ज़ी लेकर आता था। शाम को तो एकाध आँख ही नज़र आती थी, मगर आज इस समय? मेरा दिल युसूफ़ के लिए तड़प रहा था। बेचैनी से तेज़-से-तेज़ क़दम बढ़ाता घर के दरवाज़े के पास पहुँचा। मोहल्ले की सारी औरतें मेरे घर पर जमा थीं... और सभी किसी-न-किसी काम में व्यस्त थीं। शमीम दादी सर पर क़ुरआन उठाए कभी आँगन में आतीं और कभी उसी तरह झुकी कमर के साथ कमरे में लौट जातीं। वह हौले-हौले बुदबुदा रही थीं। शैतान पर लानत! एक को देखो मर रहा है, दूसरे को देखो पैदा होना चाहता। काहे के वास्ते भला? इसमें और उसमें फ़र्क़ क्या है? यह भी कोई बात हुई! यह रहे या वह रहे, कुत्ते का पिल्ला तो आख़िर पिल्ला ही कहलाएगा। उनमें फ़र्क़ ही क्या है? फिर वह ज़ोर से चीख़ी, ''सलवात भेजो! लानत है तुम सब पर, ख़ामोश बैठी हो, सलवात भेजो, गन्दे पैरों के साथ कमरे में मत जाना, पहले 'ला इलाहा इल्लल्लाह' कहना।''

माँ की दर्द में डूबी चीखें, उस दिन की फ़रियादों से मिलती लग रही थीं जब बाबा की दुकान में घुसकर वे लोग उनकी सारी किताबें और काग़ज़ बाहर फेंक रहे थे। गली जले हुए काग़ज़ों में भरी हुई थी। मैं चकराया परेशान सा खड़ा था। दिल चाह रहा था कि मैं भी यूसुफ़ के पास तुरन्त पहुँचूँ। आख़िरकार औरतों की भीड़ को चीरता अपने लिए जगह बनाता किसी तरह मैं कमरे तक पहुँच ही गया।

माँ कमरे के ठीक बीचोबीच लेटी हुई थी। उनके सिरहाने दादी बैठी क़ुरआन

पढ़ रही थीं। फ़ातमा और सम्बर ख़ानम पुरानी चादर से लम्बी-लम्बी पट्टियाँ फाड़ रही थीं और सामने बैठी रबाब को पकड़ा रही थीं। जो उन्हें तहकर एक के ऊपर एक रख रही थीं। असग़र की माँ कैंची को मोमबत्ती की लौ पर गर्म कर रही थी। मेरी निगाहें यूसुफ़ को ढूँढ़ रही थीं कि तभी अफ़ाक़ की अम्मा की गोद में बेहाल यूसुफ़ को देखा। वह रोती हुई, दुआ पढ़-पढ़कर पूरे कमरे में फूँकती फिर रही थीं। तभी ख़ाला रिज़वाना की निगाह मुझ पर पड़ी और वह क्रोध से बिलबिला उठी। हाथ में पकड़ी ताँबे की थाली को मेरे सर पर पूरे ज़ोर से मार बैठी, ''हर्राफ़ा! छदमी! यहाँ खड़ा टुकुर-टुकुर किसे ताक रहा है? जा, अपने उसी कुत्ते के बाप की दुकान पर, उससे चलने को कह। कहना कि किसी गधे को भेज दे जिसके पास मोटर कार हो ताकि तेरी माँ को डाक्टर के पास दिखा लाएँ या हकीम को यहीं भेज दें।''

बरामदा मेरी आँखों के सामने घूमने लगा। बिना ध्यान दिए मेरी जबान मेरे दाँतों के बीच आ गई और दर्द के मारे जान निकल गई। आँखें आँसुओं से भर उठीं। जाने क्यों एकाएक अपने आस-पास के सारे लोग मुझे चुड़ैलें और जिन्नात से लगने लगे, काले-सफ़ेद कपड़ों में लम्बे छोटे हाथों के साथ युसूफ़ की 'किहान बच्चेहा' की तरह किराए पर लिए, कोई इस गोद से उस गोद में दे रहा था। कोई उसकी कमीज़ हटाकर उसका पेट देख रहा था। कोई कह रहा था, ''अरे इसे तो बड़ी माता निकली थी। मेहँदी लगाने से उसकी सारी ठंडक सीने पर जमा हो गई है। अब सीने पर बलगम जमा हो गया है। साँस घुट रही है।''

माँ की चीखें अब पहले से ज़्यादा बुलन्द हो गई थीं, उन्होंने अपने बाल नोच-नोचकर मुँह पर बिखरा लिए थे, ''या हज़रत मासूमा! या ज़ैनबे कुबरा या ख़दीजा या हिन्दे जिगर खूर, आओ मेरी मदद को।'' सलवात की आवाज़ों से भरे घर में शमीम दादी ने दालान से कमरे में झाँकते हुए डाँटा, ''लानत है तुम पर! हिन्दा को मत पुकारो, अब भी नहीं जानती हो कि कौन किसके साथ है, अरे, ज़ैनबे कुबरा कहो! फ़ात्मा ज़हरा कहो, ला इल्लाह इल्लल्लाह कहो ताकि यह तुख़्मेना— बिस्मिल्लाह बाहर निकले और हमारी जान छूटे।''

ख़ून जो ज़बान से निकला था मैंने यूनिफ़ार्म के कोने से पोंछा और तेज़ी से अफ़ाक़ की अम्मा के पास पहुँचा। ज़बान हिल नहीं पा रही थी, फिर भी किसी तरह बोला, ''दादी माँ! दादी माँ! यूसुफ़ को मुझे दे दीजिए। इसे बाहर ले जाता हूँ, ऊपर छत पर खुली हवा है और इतनी भीड़ भी नहीं है।''

कमज़ोर आँखों को यूसुफ़ ने खोला और मेरी तरफ़ लपका!

''दादी माँ यह बच्चा कमज़ोरी से दम तोड़ रहा है।''

यूसुफ़ लड़खड़ाती ज़बान से कुछ बोला। उसे साफ़ बोलना अभी नहीं आता

था, ''चाहेता आ टा बाबा.... चाहेता।''

शमीम दादी की आवाज़ ने सबकी आवाज़ को दबा दिया, ''अंधेर है, क्या बुरा वक़्त लगा है क़यामत है। कोई समझाए तो ज़रा यहाँ हो क्या रहा है? कोई क्यों नहीं आ रहा है इस तुख़्मेनाबिस्मिल्लाह को उठाने? माना कि अगर यह बियाबान में होता तो पत्थर पर जन्म देती... अगर पहाड़ पर होती तो साँपों और गिरगिटों को मदद के लिए पुकारती, वे इसकी आवाज़ सुनते.... क़यामत है क़यामत।''

औरतों के रोने और सलवातों की आवाज़ ऊँची हो गई थीं। इन सबसे ऊपर उभरती माँ की चीखें थीं। ख़ाला रिज़वाना की निगाह मुझ पर पड़ी और मैं डरकर चूहा बन गया। ख़ुद को किसी की ओट में छुपाना ही चाह रहा था कि चिंघाड़ सुनाई पड़ी, ''तुम अभी तक यहीं खड़े हो, कहा नहीं था कि अपने बाप की दुकान पर जाओ। नहीं कहा था गधे तुमसे?''

रुक़इया, मेरी छोटी बहन भीड़ में न जाने कैसे अफ़ाक़ की अम्मा की टाँगों के बीच से मेरे पास पहुँची, ज़मीन पर बैठे-बैठे मेरी उँगलियाँ खींचकर बोली, ''शादी! शादी! 'किहाने बच्चेहा' ले आए हो न?'' उसकी भीगी आँखें मेरी छलकती आँखों में गड़ गई थीं। यूसुफ़ ने अपना हाथ खोला और मेरे बाल अपनी मुट्ठी में जकड़ लिए। उसकी ज़बान अभी साफ़ न थी, वह उसी से बोला, ''चाहेता आबाम टा.... चाहेता...।'' उसके मुँह का भीतरी भाग और नन्ही ज़बान लाल अंगारा हो रहे थे।

दादी माँ ने मेरी ठुड्डी पर ज़ोर से हाथ मारा, ''यह बच्चा आख़िर कह क्या रहा है? तुम तो उसकी ज़बान समझते हो। वह जो माँग रहा है, देते क्यों नहीं हो नासपीटे!''

दोबारा ज़बान घायल हो गई, दादी अम्मा! दादी अम्माँ! इस बच्चे को मुझे दे दीजिए। यह घुटन से मरा जा रहा है। आप समझ नहीं रही हैं क्या? मुझे बिलावजह क्यों मार रही हैं? यहाँ... यह कोई जगह है जहाँ इसे लेकर खड़ी हैं? कहकर बलपूर्वक मैंने यूसुफ़ को उसकी गोद से छीना और दसियों आवाज़ों और औरतों के बीच से होता हुआ बरामदे में आया। भीड़ से निकलकर अभी आगे बढ़ने का रास्ता ढूँढ़ रहा था कि ख़ाला रिज़वाना की निगाह फिर मुझ पर पड़ी और फ़ौरन ही एक झन्नाटेदार चाँटा उन्होंने मेरे गाल पर जड़ दिया, ''कुत्ते के बाप! बेहया बेग़ैरत तुझसे कितनी बार कहूँ कि उस अपने बाप को सारे तामझाम के साथ यहाँ ले आ, कुत्ते के पिल्ले! अँगूठे बराबर छोकरा है, कितनी बार आदमी अपनी ज़बान ख़ाली करे।'' उन्होंने हाथ आगे बढ़ाया कि यूसुफ़ को मेरी गोद से छीन लें।

सहसा मेरे सब्र का बाँध टूट गया। मेरा पारा सातवें आसमान को छूने लगा। एक

धाकड़ लात ख़ाला रिज़वाना के पैरों पर खींच मारी और चीख़ा, ''आप ख़ुद है कुत्ते की माँ! आप ख़ुद कुत्ते की पिल्ली! जो यह भी नहीं जानतीं कि मेरे बाबा की दुकान को उन ज़ालिमों ने लूटकर सील कर दिया है। क्या आप नहीं जानतीं कि वे बाबा को गिरफ़्तार करके ले गए हैं! आख़िर बाबा हैं कहाँ जो जाकर उन्हें ले आऊँ?... कहाँ जाऊँ उनके पीछे।''

ख़ाला रिज़वाना दर्द के मारे अपने अन्दर ही बल खाने लगीं। चेहरा काले जामुन-जैसा नीला पड़ गया। आँखें छत पर टिक गईं, मुँह खुला-का-खुला ही रह गया, आवाज़ हलक़ में फँसकर रह गई।

अब माँ की आवाज़ें कानों के पर्दे फाड़ने लगी थीं। तेज़ी से सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ ऊपर छत पर पहुँचा। आँसू मेरी आँखों से बारिश की तरह झर रहे थे। मेरे पीछे आती रुक़इया भी रो रही थी।

यूसुफ़ ने अपनी कमज़ोर गर्दन मेरे कन्धे पर टिकाकर गर्म दहकते गालों को मेरे चेहरे से सटा लिया।

सूरज डूबने वाला था, अलगनी से बाबा की लुंगी उतार वहीं छत पर डाल उस पर मैं और रुकइया बैठ गए, कोई नर्म चीज़ बहती हुई सुबह की मन्द पावन की तरह सरसराती भीगे कपड़ों के बीच में आकर मेरे चेहरे से टकराई। रुक़इया बोली, 'शादी, सिन्दबाद की बाक़ी यात्रा तुम मेरे लिए पढ़ दो।'

मैं यूसुफ़ के चेहरे पर छलक आए पसीने और मुँह से बहे ख़ून को अभी पोंछ ही रहा था कि माँ की चीख़ें यकायक से शान्त हो गई और अफ़साना के रोने का कर्कश स्वर उभरा! औरतों का शोर, सलवातों की आवाज़ और वह भी शमीम दादी के मुँह से निकली हुई जो सात मोहल्लों तक गुँजती थी, बुलन्द हुई। रुक़इया बोली, ''यह रहा आधा पैसा, मेरा हिस्सा, आज रात को ज़रूर पढ़ोगे न शादी।''

यूसुफ़ ने अपना छोटा-सा हाथ यूनिफ़ार्म की सिलाई उधड़े छेद से अन्दर डाला। उसका हलवे की तरह नर्म हाथ, जिस पर चाँद-जैसे पीले-पीले नाख़ून रुई के गोले की तरह मुलायम थे, मेरे सीने से टकराकर कुछ ढूँढ़ता-सा बोला, ''श्ती... टा.... चाहेता... आ बाबा!'' इतना कहते ही उसके मुँह से जमा हुआ ख़ून का थक्का बाहर निकला और बाबा की सफ़ेद लुंगी पर गिरकर फैल गया और उसका सर मेरे कन्धे पर लुढ़क गया।

अचानक टॉफ़ी का ध्यान आया, जाने मैंने शोर-शराबे और धक्का-मुक्की में उसे कहाँ गिरा दिया था।

बाबा और यूसुफ़ की क़ब्रों का कोई अन्दाज़ा नहीं था, तो भी मैं उन दोनों को बेअन्दाज़ा चाहता था।

किसे सलाम करूँ

सीमिन दानिशवर

''सचमुच अब कौन बचा है जिसको सलाम करूँ? स्कूल की प्रिंसिपल मर चुकी है। हाज इस्माइल ग़ायब हो गया है, एक लड़की थी वह भी भेड़िये की क़िस्मत से बियाबान चली गई। बिल्ली मर गई, उधर पास पड़ी मकड़ी है, मकड़ी ख़ुद मर चुकी है। उफ़! कैसे बर्फ़ गिर रही है। जब भी बर्फ़ गिरती है दिल ऐसा बैठने लगता है और जी चाहता है अपना सर दीवार पर दे मारूँ।

डॉक्टर बीमे कहता है कि जब भी तुम्हारा दिल बैठता महसूस हो फ़ौरन घर से बाहर निकलो। जब कभी दिल घबराए और तुम तन्हा हो तो ज़ोर-ज़ोर ख़ुद से बातें करो। दिल बहल जाएगा। यानी कि एक गुड़िया एक पत्थर से बनी गुड़िया की तरह सब्र करे? यह भी कहा कि निकल जाओ वीराने की तरफ़ और ज़ोर-ज़ोर चीख़ो। और जिसे चाहो गाली दो... कैसी बर्फ़ गिर रही है, पहले तो अपने में नाचती रही और चारों तरफ़ फैल गई, अब रेज़ा-रेज़ा टपक रही है। इस तरह बरस रही है कि लगता है जल्दी पीछा छोड़ने वाली नहीं है। चिल्ले की पहली तारीख़ से यह यूँ ही गिर रही है।''

पहले की गिरी बर्फ़ जमकर सख़्त हो गई है। छत पर पड़ी बर्फ़ को लोग गलियों के अलावा कहाँ ले जाकर फेंकते? वह तो काम है पहलवानों और कसरत करने वालों का। आमदोरफ़्त बन्द, सवारी खड़ी, आख़िर बच्चों के स्कूल की छुट्टी हो गई। अगर इस तरह बर्फ़ न गिरे तो महँगाई और अकाल पड़ जाएगा। यहाँ तक बिजली और पानी का भी मुश्किल। अब जो यह बरस रहा है तो स्कूलों में छुट्टी कर दी गई है। कल रात अलाई सड़क के लैंप जले नहीं और कौकब सुल्तान उसी तरह कुर्सी में बैठी अँधेरे में हैरत से आँखें फाड़े थी। वह तंग आ गई हैं। उनका दिल हौलने सा लगा। ऐसा हौला कि उन्हें लगा दिल में कोई बैठा कपड़े धो रहा है। सोचा कि अगर कमरे से न निकली तो पागल हो जाएगी। धीरे-धीरे लड़खड़ाते उस अँधेरे और ठंडक में घर के दरवाज़े से निकल वह गली में खड़ी हो गई। घिग्घी बँध गई। पड़ोस का बच्चा रो रहा था। उनके घर का पानी का नल कल रात चिटख गया। आज तीन दिन से कूड़ा उठाने वाला भी नहीं आया।

कौकब सुल्तान शिक्षा मन्त्रालय से कर्मचारी के रूप में रिटायर हुई हैं। घर में ऐसा कुछ नहीं है जो कोई ले जाए। पानी के पाइप का टूटना भी उन पर कोई असर न डाल सका। उनका कमरा पहली मंज़िल पर पनीरपुर आग़ा के पास वाला था, जिसमें दो बड़े कमरे, किचन और बाथरूम उनके क़ब्ज़े में था, जिसमें वह अपनी तीन लड़कियों और एक बीवी के साथ रहते थे। पड़ोसियों ने उन्हें 'पनीरपुर' का लक़ब इसलिए दे दिया था कि जाले सड़क पर उनकी पनीर की दुकान थी। वह किसी को उधार सामान नहीं देती थीं। यहाँ तक कि तुम्हें भी नहीं, उनका असली नाम जनाब शरियतपुर यज़दानी था। कौकब सुल्तान जब वज़ू के लिए नीचे गई तो बावर्चीख़ाने से पानी भी साथ ले गई। कौन-सा उन्हें पकवान पकाना होता था। यह दाँत भी जो कँपकँपाहट से लगातार खटखट बजते और ज़बान को ज़ख़्मी कर देते थे। कमरा भी तो हथेली से ज़्यादा बड़ा न था। सामान भी न था। जो था या नहीं था, वह जहेज़ के नाम पर दामाद के घर भिजवा दिया था।

कौकब सुल्तान कुर्सी के नीचे से निकलीं और खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गईं और बाहर पड़ती बर्फ़बारी का तमाशा देखने लगीं। सभी जगह बर्फ़ से सफ़ेद थी। पड़ोस का घर बर्फ़ से ढँक गया था। बर्फ़ बारजे और खिड़की के शेड से झालर की तरह लटक रही थी। यही दृश्य कल था। यही दृश्य परसों भी था। उनका कैसा दिल बैठा जा रहा है। पूरा माह यही हाल रहा है। इस्माइल आग़ा के इन्तजार से वह कहीं बाहर भी नहीं निकली। ''क्या इश्क़ हम किया करते थे कि अफ़सोस सब-कुछ जल्दी गुज़र गया। गर्मियों में प्रिंसिपल चली गई ओविन। हाज इस्माइल हमाम गर्म कर देते, फिर उसे लेकर हमाम जाती। हम दोनों नहाते, एक-दूसरे का बदन मलते, गुदगुदाते, खिलखिलाते एक-दूसरे पर से सदक़ा और कुर्बान भी होते। एक-दूसरे के साथ क़ौल और ग़ज़ल गाते। फिर प्रिंसिपल के चबूतरे पर बाग़ के बीचोबीच हम ग़लीचा बिछाते और उस पर बैठ बारी-बारी से तिरयाक का कश खींचते थे। उसका जूस मुँह में घुलता और हम सुरूर से झूमते और फिर प्रिंसिपल की मच्छरदानी में हम दोनों बिना लिबास के बिलकुल नंगे मस्त सो जाते थे। मैं उसके लिए पाँच बार अमीर सालान पढ़ती। छह बार 'शम्से कहकहे', दो बार बूसा-ए-अज़रा पढ़ती। प्रिंसिपल का कमरा किताबों से भरा था। मैं घर का काम सँभालती थी। अनारदाना लेकर स्कूल प्रिंसिपल के पास पहुँचती। वह न होता तो जूस ले जाती। फिर खाना पकाती, खिलाती। वह रात को खाना न खाती सिर्फ़ दूध पीती थी। उनके सोने के बाद हम शहर के हर उस कोने में पहुँचते जहाँ ज़िन्दगी का मज़ा था। तमाशाख़ाने, सिनेमा...सिनेमा बग़दाद का चोर, न्यूयॉर्क का रहस्य, आश्शील मालालान को तो चार-पाँच बार देखा था। हमारे पैसों में बरकत थी। ख़ानम

प्रिंसिपल मुझे अच्छा पैसा देती थी और हाज इस्माइल मंत्रालय से अपनी तनख़्वाह लेता था।''

बीमा डॉक्टर ने ख़ुद कहा था अपने से बात करो। जो अच्छा लगता है बोलो, वह ज़हर जो अन्दर जमा है बाहर निकालना चाहो तो निकाल दो। अपने दिल का ख़्याल रखो।

'हम कर्बला गए। इमाम हुसैन से औलाद माँगी। ख़ुदा ने 'रबाबे' को हमें दिया। एक साल बाद हाज इस्माइल सुबह काम पर गया तो लौटा ही नहीं। ऐसा गुम हुआ कि प्रिंसिपल खानम के रपट लिखवाने ढुँढ़वाने से भी न मिला। ख़ुद रबाबे को बग़ल में दबा मैं इस ऑफ़िस से उस ऑफ़िस उसे ढूँढ़ती, मगर वह अल्लाह का बन्दा न मिला। क्या करती? रबाबे को सुलाकर ख़ुद अकेले तिरयाक का कश लेने बैठ जाती। यहाँ तक कि प्रिंसिपल खानम की बिल्ली तक तिरयाकी हो गई थी। इधर महक उठती उधर वह आकर मेरे पास बैठ जाती थी। आँखें बन्द कर लेती और खुर-खुर करने लगती। आख़िर एक दिन अपनी मौत मर गई। मकड़ी को भी धुएँ का चस्का लग गया था। कमरे के एक तरफ़ बड़ा-सा जाला तानकर रहती थी। जैसे ही तिरयाक का धुआँ लहराता वह जाले से बाहर निकलती और नीचे आकर ठस हो चिपक जाती। उसे अपनी जगह से हिलना भी मंजूर न था। मुँह धुएँ की तरफ़ किए रहती। आख़िर वह भी मर गई।

ख़ानम प्रिंसिपल ने हाज इस्माइल की जगह मुझे चपरासी की ख़ाली जगह पर रखने का काग़ज़ भेजा। मुझे तब तक अपने घर में रखा, जब तक ज़िन्दा रही। ख़ुदा उन्हें जन्नत दे। कहती थी अब तुम्हारा दोहरा काम हो गया है। लेकिन साथी के बिना यह ज़िन्दगी ज़्यादा काम करके ही गुज़ारी जा सकती है। उसे मेरा तिरयाक पीना पसन्द न था। उन्होंने उसकी इतनी बुराई की कि आख़िर मैंने तिरयाक का नशा करना छोड़ दिया। घर को सँभालती, स्कूल की सफ़ाई करती। मोटर धोती, बच्चियों की रिपोर्ट घर-घर पहुँचाती। दस से दो तूमान इनाम में मिलता। ईद में गमलों में फूल के पौधे लगाती। फूलों को गुलदान में सजा प्रिंसिपल के कमरे में रखती। यह सब करती कि रबाबे का दिल मज़बूत रहे। अमीरों की तरह उसे कपड़े पहनाती ताकि उसे किसी तरह का फ़र्क़ महसूस न हो। अगर प्रिंसिपल न मरती तो मैं कभी बेटी की शादी न करती। उनका मरना और मेरा बेघर बार होना। सत्रह साल की नौकरी के बाद यह कहकर मुझे नौकरी से निकाल दिया कि तुम्हारी उम्र हो गई है और घर बाहर कर दिया। अब मैं मजबूर थी कि अपनी बेटी को जलाकर राख कर दूँ और किसी बेकार और चौपट मर्द के हाथों में उसका हाथ दे दूँ। तुम तो गुम हुए इंसान की जगह काम करती थी। उसका कोई पता नहीं, क्या करूँ? लड़की का चेहरा-मोहरा

लिबास अन्दाज़ सब-कुछ बड़े घरों-जैसा था। हर हफ़्ते ब्यूटीपार्लर जाती थी। ज़िन्दगी किराए की कोठरी और पेंशन से कैसे चलती। लड़की यूनिवर्सिटी में दाखिले के इम्तहान में पास नहीं हुई।

''बीमा डॉक्टर कहता है जब तुम्हारा दिल चाहे ज़ोर-ज़ोर से गाली दो। ताकि तुम्हारे दिल को ठंडक मिले, मुझे गाली बकना आती थी। ख़ुदा जानता है मैं आशिक़ थी। चश्मे के पानी, दरख़्त, चाँद और आसमान मुझे अच्छा लगता था। मुझे किसी ने नमाज रोज़ा सिखाया नहीं, न ही दुआ और क़ुरआन पढ़ाया कर्बला जब गई थी, हाज आग़ा के पीछे खड़े होकर नमाज़ पढ़ लेती थी। वह ज़ोर-ज़ोर पढ़ता मैं उसे दिल में दोहरा लेती थी। तेहरान जो लौटी तो सब-कुछ हम भूल गए। उसके बदले गाली देना जानती हूँ, सारे नामर्द मर्दों को, सारे बुरे दिनों को, उन सारे मर्दों को जो बाद में बुरे बने। उन सब को जो बाद में नामर्द साबित हुए उन्हें बुरा भला कहती हूँ। बहुत से ऐसे हैं जो अपनी बात निबाहने में कामयाब हुए और मरे, कुछ खो गए, क़ब्र में चले गए। ख़ुदा सबका हिसाब लेगा। तभी ख़ानम प्रिंसिपल कहती थी 'हमारी बदक़िस्मती यह है कि हम ख़ुद मर्दों को नामर्द बनाते हैं। हमारा ही ख़ून उनकी रगों में दौड़ता है और हमें बिना ख़ून, बिना मर्द के रहने देते हैं। आग़ा रज़ा को गोष्ठी में ले आये। एक सिरे से दूसरे सिरे तक लोग ठसाठस भरे थे। बार-बार कह रहे थे, ''आगा रज़ा सलाम करो,'' उसने पूछा, ''किसे सलाम करूँ?''

चलो उठूँ और जाकर दूध ले आऊँ ताकि खीर बनाऊँ... खीर नहीं, फ़िरीनी बनाऊँगी, मगर इस बर्फ़ीले मौसम में कैसे निकलूँ। अमेरिकाई जूता तो ख़रीदा है, वह नम्बर में बड़ा निकला। दाँत अलग बज रहे हैं। गर्दन और दाहिना कान दर्द से फटा जा रहा है। सर और दाहिना ज़ानू टीसें मार रहा है। कल रात से अभी तक मैं पल भर के लिए भी हाज इस्माइल की याद से निकल नहीं पाई हूँ। सर चकरा रहा है, मगर जाना तो है। अगर इस कमरे में तन्हा बैठी रही तो अपने से बात करती ही रहूँगी। सर धमकने लगता है। लगता है दिल को कोई मुट्ठी में पकड़ निचोड़ रहा है। मोज़े जो मैंने ख़ुद बुने हैं उसे अख़बार के साथ पहनती हूँ। गर्म गाउन तो मेरे नाप का है। वे दिन भी जब हम ढेरों काम करते थे। अभी तक मैंने लगभग दस जोड़े गर्म स्वेटर मंसूर और मसूद के लिए बुने थे। कैसे नमूने डाले थे। लेकिन अब मेरा तोहफ़ा क़ुबूल करना, मना हो गया है। मैं बुनती हूँ और ख़ुद ही उधेड़ती हूँ। न अपना कोई बाक़ी है जो बुनकर उसे दूँ। न पैसे हैं कि नया ऊन ख़रीदूँ। पेंशन भी नहीं बढ़ी मगर महँगाई बढ़ गई है। जहन्नुम है। जहन्नुम, सिर्फ़ सस्ती इंसानी ज़िन्दगी है।

''पहले ही दिन कहा था, इस पूरी दुनिया में इकलौती औलाद है मेरी। इसको मुझसे अलग मत करना। ख़ुदा को भी यह पसन्द नहीं आएगा मगर वह तो पहले

दिन से मुँह फुलाए रहा। वरना जाता बाग़े सबा में मकान लेकर रहने ? मैं भी मजबूर हो गई। वहाँ गई ताकि हक़ की बात करूँ, मगर उसने मेरा हाथ पकड़ बेटी के घर से निकाल दिया। मेरे भी समझ में आ गया कि मैं क्या करूँ। जाती हूँ ख़ानम पनीरपूर के घर और नमाज़े रुसवाई पढ़ना सीखती हूँ। अपनी शलवार को सर में बाँध लूँगी। बाथरूम के पीछे छत पर दामाद को आग लगाने के लिए नमाज़े रुसवाई पढ़ती हूँ। दामाद पर लानत भेजूँगी। ख़ानम पनीरपूर हर तरह की नमाज़ें पढ़ना जानती हैं। उस दिन उसने ख़ुद कहा था कि नमाज़े रुसवाई पढ़ डालो। जुमेरात की रात को आग़ा राशिद का रौज़ा किराए पर लूँगी। लाउडस्पीकर लगवा दूँगी ताकि सारे पड़ोसी भी सुनें। दिल चाह रहा है क़मरमुलूक की आवाज़ सुनूँ। बुलबुल की तरह चहकता है। क़मरमुलूक के कई रिकार्ड ख़ानम प्रिंसिपल के पास थे। पता नहीं एकाएक मेरी क़िस्मत को क्या हो गया ?

''वह गर्मी की छुट्टियों के दिन थे। लान पर पानी छिड़ककर हम ख़ुशबूदार शमा की रौशनी में ग्रामोफ़ोन को कूक करके उस पर क़मरमुलूक का रिकार्ड लगा देते थे। नींबू का शरबत बनाती थी। गिलास भर हाज इस्माइल की तरफ़ बढ़ा कहती, 'नूशे जान! गवारा हो यह तुम्हारे वजूद को'... और वह कहता नहीं तुम पहले पियो.... काश रबाबे मंसूर और मसूद के साथ अगर आती तो मेरा दिल खिल उठता। मसूद से कहती 'मसूद चूहा खाओगे ?' तो वह जवाब देता कि 'तुम खाओ न।' मैंने कहा, अच्छा एक प्यार दो मीठा-मीठा, सुनकर अपना मुँह छुपा लिया था। मुझे नमाज़े रुसवाई ज़रूर पढ़नी है। कड़कड़ाती धूप में पैख़ाने के पीछे पढ़ूँगी। बाद में यज़ीद और माविआ पर लानत भेजूँगी, यही तो ख़ानम पनीरपूर ने कहा था। जाड़े आने से पहले छत पर बैठी तरकारी काट रही थी, मेरा भी दिल भरा था। ऊपर चादर फैलाने गई थी। उनके पास पहुँचकर बोली 'सलाम!' उस दिन तो हमारी पहली मुलाक़ात थी। बस हमारे मुँह से फूल झड़ रहे थे। धूप भी बढ़िया खिली थी। चलते-चलते बताया कि मैंने ज़िन्दगी अच्छी गुज़ारी थी, मगर आख़िरत (परलोक) दामाद की वजह से दुख भरी है। फ़ौरन बोली 'नमाजे रुसवाई' पढ़ो ताकि ख़ुदा उसे बदनाम करे। उस दिन मुझे उनकी बात समझ में नहीं आई मगर उस दिन से ख़ानम पनीरपूर एकदम बदल गई। हमारी मुलाक़ात होती तो वह ऐसा दिखाती कि उन्होंने मुझे इससे पहले कभी देखा ही न हो। मैंने भी सलाम करना उन्हें बन्द कर दिया था। लेकिन आज ज़रूर जाऊँगी ताकि 'नमाज़े रुसवाई' पढ़ना सीख लूँ। काश! धूप होती। पैख़ाने की दीवार के पीछे बर्फ़ ऊपर तक भरी है। लगता है ख़ुदा ने अपने फटे लिहाज़ को झाड़ा है। हर जगह रुई गिरी है और अभी तक गिर रही है। अस्तग़फिरुल्लाह! नहीं मुझे ऐसी बातें नहीं करना चाहिए। ऐ औरत जो तू यह सब

बकती है तभी तेरा यह हाल है।

''एक ही बात रह गई कहने को जो तेरे जाने के बाद लोग कहेंगे? तुम और तुम्हारे बैल-जैसे भाइयों ने मेरी बेटी को मार डाला है। गर्भवती और महीनों का बोझ लिए एक हाथ से बेटे का नाश्तेदान और दूसरे हाथ से मसूद कुत्ते की औलाद का हाथ पकड़े चली जा रही है। ऊपर से तुम सबके वह कपड़े धोती है, इस्तिरी करती है। दोपहर का खाना पकाती है, रात का खाना पकाती है। तुम्हारी माँ तो हरदम तस्बीह पढ़ती रहती है और हुक्म चलाती रहती है। तुम्हारे भाई पक्के बदमाश। लौटना तो अपने मरने की ख़बर पाना। मेरी बच्ची गर्म पानी लाती है ताकि तुम पैर धो सको। तुम्हारे पैरों में निकली कीलों को पैर मलने के पत्थर से मलती है। मेरी दोनों आँखें फूट जाएँ इन्हीं आँखों से मैंने देखा है।

''जब मैं उसके घर जाती तो मन भर की होती। जब लौटती तो सौ मन का बोझ लेकर लौटती! वह इतना ग़ुस्सा दिखाता। माँ, इतनी ज़्यादा बातें मुझे और बेटी को सुनाती कि जी भर जाता। अपनी ज़िन्दगी से नफ़रत हो जाती। इतना कम जाने पर यह हाल होता। एक बार बालबाड़ी में गई ताकि मसूद को देख लूँ। वहाँ पहुँची तो रबाबे को देखा, पूरे दिनों से थी। एक हाथ में ख़रीद की बास्केट और नाश्तेदान उठाए और दूसरे से मसूद का हाथ पकड़े। बर्फ़ पर उसके पैर डगमगा रहे थे। मसूद अलग ठुनक रहा था अम्मा गोद ले लो... अम्मा गोद ले लो। आगे बढ़कर मैंने बेटे को गोद में उठाया। माँ-बेटी घर पहुँचे तो देखा—सास बैठे-बैठे नमाज़ पढ़ रही है और वह अंडे फोड़ रहा है। भाई वहाँ मौजूद न थे। यह देख मेरा मुँह कड़वा हो उठा और जो मुँह में आया सुना डाला। क्या सचमुच तुम मर्द हो। अरे मुर्दे तुमसे इतना नहीं होता कि अपने बच्चे को नर्सरी से ले आओ। कुर्सी के नीचे से मेरा हाथ पकड़ा और धीरे-धीरे मुझे बाहर की तरफ़ खींचकर उसने दरवाज़े के बाहर धकेला और कहा—जंगली भूतनी, पतियारी औरत, दमामे जादूगरनी, कौन-सी गाली थी जो न दी...

''सुना है, अब वह बीवी को मारने भी लगा है। पड़ोसियों से सुना है। अरे मेरी गुड़िया! मैंने तुम्हें चपरासी की छोटी-सी तनख़्वाह से भी बड़े स्कूल में पढ़ाया था। यह भी सुना कि बेटी ने मंसूर को बिना किसी क़ाबले के जन्म दिया। अब वह बीस माह का हो रहा है। बोलता भी होगा। सास ने कहा दूसरे बच्चे के लिए 'होल्डर' ज़रूरी नहीं। वह ख़ुद बच्चे को उठाए थी। पड़ोसियों ने मदद की थी। जब यह सुना तो दीवानी-सी उठी और मन भर मुसम्मी ख़रीदी और उसे देखने पहुँच गई। देखा। लड़की पीली, ऐसी पीली जैसे हल्दी की गाँठ, हाल से बेहाल। मुझे देखकर विनती करने लगी, 'माँ तुम यहाँ से जाओ। यह फल भी ले जाओ, किसी ने देख लिया तो

बड़ी आफ़त टूटेगी।' वहाँ गन्दे चादरों का ढेर लगा था। मैंने कहा, ''रबाबे, तेरी माँ मरने वाली है, यह ज़िन्दगी का क्या ढब है? यह तो मरना हुआ। मैं, तुम्हारे बाप ने, ख़ुदा उस पर रहम करे, हम दोनों ने ज़िन्दगी का हर मज़ा लिया था। क्यों तुम इस तरह जल रही हो और सँभाल रही हो? क्या इंसान को कई बार ज़िन्दगी मिलती है? तुम्हारा बाप तुम्हें लोरी गाकर सुनाता था। नहलाता था, घुमाने ले जाता था।'' मेरी बातें सुनकर बोली, 'माँ, दो बच्चे हैं मेरे, कैसे तलाक़ ले लूँ?' मैंने कहा जब कनीज़ ही बनना था तो इतनी पढ़ाई क्यों की थी?

'मेरे साथ वह क्या बुरा करता है?'

'अरे मेरी बेटी, अपने को फ़रेब दे रही हो? चाहती हो वह कोई और नई आफ़त तुम पर तोड़े? मेरे लिए तो मसूद की नर्सरी के दरवाज़े तक बन्द हो गए हैं कि वहाँ न जाऊँ। जबकि मैं क़स्साबी के पास जाती हूँ। पंचूरिया के पास जाती हूँ। दूधवाले के पास जाती हूँ। ख़ुद उसके घर के क़रीब जाती हूँ। एक पड़ोसी ने बेटी को देखकर मुझे ख़बर दी कि रबाबे के ऐनक लग गई है। यही कि मैंने उसे पढ़ाया, इसीलिए उसे चश्मा लगाना पड़ा? क्या नहीं सुनना पड़ता मुझे। यह भी सुना कि उसकी मार से मेरी बेटी का सर फट गया। सुना मसूद को मारा। उसके कान का पर्दा फट गया। दामाद पर जितनी भी लानतें भेजूँ तो क्या! ज़ालिम हमेशा ज़ालिम ही दिखता है।

''ओ रबाबे! मैंने और तेरे बाप ने इस दुनिया से हर मज़ा लूटा है। मैंने तुम्हें भी आराम से रखा। कभी काम न करने दिया। शौहर के घर जाकर इस तरह मेहनत करती हो? तुम्हारी ननदें घर आती हैं। सिवाय ताने देने के कभी तुम्हारी सेवा करती है? रबाबे-रबाबे जूस लाओ, जाओ चूज़ों का शोरबा बनाओ, जाओ भागकर, दूध ख़रीदकर लाओ। गर्म करके दो, ताकि ज़हर मार करूँ। बेचारी ख़ानम प्रिंसिपल, ख़ुदा उन्हें करवट-करवट जन्नत दे, कहा करती थी : नहीं चाहती तुम्हारा ग़म, यह बच्ची जाने उसे पढ़ा रही हो ताकि वह कामयाबी की तरफ़ बढ़े। तलाश है तुम्हारी कि रबाबे को तुम अपने वर्ग से बाहर निकाल सको, मगर तुम शायद नहीं जानतीं कि औरत का मतलब है मेहनती वर्ग। श्रमिक वर्ग। उसकी क़ब्र पर नूर बरसे, बड़ी अक़्लमन्द औरत थी।

''उठती हूँ, चलती हूँ, ताकि दूध ख़रीदूँ, खीर बनाऊँ, फ़िरनी बनाऊँगी ये दाँत अब साथ छोड़ रहे हैं। बीमा डॉक्टर ने कहा था, जब भी अकेली हो, घबरा रही हो तो अपने से बात करना।

वह उठी और चलते हुए आइने में अपनी शक्ल देखी। बाल ऊपर सफ़ेद हो रहे थे, उसके पीछे लाल और बाल की तह काली। यूँ ही नहीं कहा था उसके दामाद ने,

उसे दमामे जादूगरनी ख़िताब दिया था, वह नहीं जानता कि जब इंसान की आह मुँह से निकलती है तो उसके बाल सफ़ेद होने लगते हैं। रबाबे जब नौ माह की पेट में थी तो वह अपना सर चदियाँ के पास बहुत खुजलाती थी। ख़ानम प्रिंसिपल कहती, बच्चे के पेट में बाल निकल रहे हैं। हर तरह से सोचो तो आज की औरत मज़दूर तबक़े से है।

कुर्सी का किनारा उठाया और एक तूमान नीचे से निकाला। उसके साथ दिल दुखा कि अफ़सोस वह दो कुर्दी ग़लीचे, जो उसने उठाकर दामाद को दे दिए थे। उसने सर पर नमाज़ की चादर डाली और उन्नाबी रंग की छतरी उठा आँगन की तरफ़ बढ़ी। बड़ी अहतियात से वह क़दम रखती गली में लोगों के घरों की खिड़की के जंगले, सीढ़ी की जाली, दीवार पकड़ते-पकड़ते आगे बढ़ रही थी। क्या अच्छा होता जो ये दाँत निकालकर आती मगर वह नहीं चाहती थीं कि लोगों के सामने बिना दाँत और झुर्रियों वाले दहन के साथ जाएँ। वह ख़ियाबाने एलायी तक जाएगी।

वहाँ दूध ख़त्म हो गया था। बोतल वाला, पैकेट वाला, यहाँ तक मामूली दूध भी वहाँ न था। तेहरान तबाह हो, वह सारे मर्द, सारे नाक़िस लोग। इस तरह का जाड़े का मौसम ठंडा और कठिनाई भरा, गर्मियों गर्म और ख़ुश्क, न नदी में पानी, न दरख़्त पर पत्तियाँ। ख़ानम प्रिंसिपल कहती थीं कि एक बूँद इंक सूखे काग़ज पर गिर कर इस तरह फैल जाती है जैसे केकड़ा अपने चारों तरफ़ हाथ-पैर फैलाए हो, यह शहर भी केकड़े की तरह फैलकर ख़राब हो गया है।

क़स्साबी की दुकान पर पहुँची। वहाँ पर पनीरपूर की बीवी भी गोश्त ख़रीद रही थीं। एक पूरी रान उसने पहले से अलग रखवा ली थी। जाफ़र आग़ा उस रान की बोटियाँ बना रहा था। हड्डियों को भी सन्तूरी की मदद से दो टुकड़े कर रहा था। गोश्त ख़ुशरंग, ताज़ा ईरानी भेड़ का लगा रहा था। कहने लगा दो किलो सात सौ ग्राम! ''ख़ूब, इस शहर में लोग यूँ ही दैत्यकाय नहीं हो रहे हैं। यूँ ही बड़बड़ नहीं करते हैं।''

ख़ानम पनीरपूर गर्म स्काफ़ सर पर बाँधे थीं, हाथों में दस्ताने थे, कोट-पतलून के ऊपर खाल का बना कोट 'पोस्तीन' पहने हुए थीं। कोट की जेब से उसने पचास तूमानी का नोट निकालकर जाफ़र आग़ा की तरफ़ बढ़ाया जो जाफ़र आग़ा के हाथ न पड़, उड़कर ख़ून के धब्बों से भरे कपड़े पर जा गिरा।

तब तक वह इंतज़ार में खड़ी रही, जब तक पनीरपूर दुकान के बाहर नहीं निकल गई। उसने हाथ आगे बढ़ाया और एक तूमानी जाफ़र आग़ा को दिया। जाफ़र आग़ा ने तख़्ते पर पड़े गोश्त से चर्बी का एक टुकड़ा उठाया गोश्त की एक बोटी और एक बर्फ़ जमी हड्डी उठा तराज़ू पर रखी।

कौकब सुल्तान यह देखकर बोल पड़ा जाफर आग़ा। पता नहीं यह बर्फ़ जमी हड्डी किस्र क़ब्रिस्तान की है, इसको मत दो, यह तो खाद... मत दो। इसे तो खाद बनाने के गड्ढे में फेंकना बेहतर होगा।

'लेना हो तो लो, एक तूमान में क्या मैं तुमको पूरा मेमना दे दूँ?' इतना कह उस कूड़े को काग़ज के टुकड़े में लपेट कौकब ख़ानम के हाथ में थमाया।

अगर हाज इस्माइल ज़िन्दा होता तो क्या यह ऐसी हिम्मत करता?

पता नहीं कौकब सुल्तान को कौन-सा भय घेरे रहता था। यह भय भी एक तरह की बीमारी है। डरती थी कि वह इसी तरह पूरी ज़िन्दगी तन्हा रहेगी, दामाद से मेल होना मुश्किल है? वह अब कभी बेटी का चेहरा नहीं देख पाएगी। चलते-चलते कौकब सुल्तान का पैर फिसला। क़रीब था कि वह गिर पड़ती। नीचे की बर्फ़ सख़्त हो शीशे की तरह चमक रही थी और ऊपर ताज़ा बर्फ़ गिरी हुई थी। उसका दूसरा डर बर्फ़ से था। कहीं इतनी ज़्यादा बर्फ़ न गिर जाए कि उसका घर से निकलना मुश्किल हो जाए। और वह न बाग़े सबा की तरफ़ जा सके न दूधवाले, पंचूरिया और क़स्साबी की दुकान पर पहुँच पाए, न ही बेटी के मोहल्ले तक पहुँच उसकी सुनगुन ले पाए। कहीं इतनी बर्फ़ न गिरे कि लोगों के घर के दरवाज़े ढँक जाएँ और वे छत से घर के अन्दर दाख़िल हों। सभी पड़ोसियों के पास बरसाती थी। उसका कमरा तो एक क़ैदख़ाना बन जाएगा। और उसी बीमारी में घिस जाएगी जिसके लिए कहा जाता है कि वह जापान से आई है। ख़ूब कै होने के कारण बदन का पानी ख़त्म हो जाता है। उसकी तीमारदारी करने वाला कौन होगा। उसकी लाश वहीं गल जाएगी। वह मौत से नहीं डरती थी। कहीं आशिक़ाना मिज़ाज रखने वाला मौत से डरता है? वह बर्फ़, तन्हाई, बीमारी, बन्द दरवाज़े और दामाद के ग़ुस्से से डरती थी। मौत से नहीं डरती है, अलबत्ता वह बहुत दर्दनाक न हो। वह ख़ुद न समझ पाए और मर जाए। शर्त है ख़्वाब में चली जाए। ठीक ख़ानम पनीरपूर की तरह, जो न क़ब्र में मुनकिर नकीर न किसी को मानती है।

अच्छा है वह अपने को व्यस्त रखे। पहले की तरह बुने, सिये। बेहत्तर है घर जाकर जो भी पोटली में या इधर-उधर कपड़ा पड़ा है सबको जमाकर एक लिहाफ़ चालीस टुकड़ों को बना डाले। लेकिन किसके लिए? लड़की जो उससे कुछ लेना ही नहीं चाहती तो फिर वह किसके लिए सिये.... वह किसके लिए ज़िन्दा है? किसे सलाम करे, कौन बचा है जिसे आदमी सलाम करे?

बच्चे पता नहीं जहन्नुम के कौन से दर्रे से निकल पड़े थे? आपस में बर्फ़ के गेंद बना खेल रहे थे। बर्फ़ की फिसलन पर फिसलकर पैदल चलने वालों के पैरों को लड़खड़ा रहे थे। एक बर्फ़ का गेंद उसकी छतरी से आ टकराया और आवाज़

हुई। उसने छतरी बन्द की मगर दिल नहीं चाहा कि बच्चों को गाली दे। सबके मुँह लाल थे। सब फिसलते हुए बर्फ़ पर ख़ुशी से चीख़ रहे थे। वह भी तो कभी बच्ची थी। उस वक़्त कितनी मस्ती की थी? कितनों के दिल जलाए थे?

एलाई सड़क की शुरुआत पर लड़कों, बच्चों ने बर्फ़ का बड़ा-सा आदमी बना रखा था। इतने लम्बे-चौड़े बर्फ़ के आदमी की सिर्फ़ एक आँख थी और दूसरी आँख के ऊपर काला कपड़ा गोल करके उसे एक काली डोर से बाँध रखा था। सर पर हैट रख दिया था। ऐसा लग रहा था जैसे उन्होंने यह सब करके अपना दिल हलका कर लिया था। अब अपने ही बनाए बर्फ़ के आदमी पर बर्फ़ के बनाए गोले फेंक रहे थे। उसके गाल सुर्ख़ अंगारा हो रहे थे। बर्फ़ की इस मारामारी में बर्फ़ के टुकड़े उनकी आँखों में उड़कर पहुँच रहे थे। उनकी आँखें शैतानी से चमक रही थीं। एक गेंद उछलकर बर्फ़ के आदमी पर पड़ती है तो दूसरी कौकब सुल्तान के सामने निशाना चूकने से गिर जाती। उधर एक लड़के के सर पर गोला लगा, वह बचने के लिए जो मुड़ा तो एकाएक उसका पैर फिसला और वह कौकब ख़ानम सुल्तान से टकराया। दोनों ज़मीन पर आ गिरे। लड़का उठ खड़ा हुआ। कौकब ख़ानम एक तरफ़ पड़ी थी। छतरी दूसरी तरफ़ और जो गोश्त...नहीं, नहीं गोश्त का कूड़ा वह भी हाथ से छटककर दूर बर्फ़ पर जा गिरा था। कौकब सुल्तान को यक़ीन नहीं आ रहा था कि वह अपनी जगह से उछलकर दूर जा पड़ी है जैसे बियाबान में वह अकेली है। बीमा डॉक्टर की दी सलाह याद की और ज़ोर से चिल्लाने लगी, ''कुरतीहा! फ़र्शमालहा, हरामज़ादेहा, स्कूल में छुट्टी कर दी गई ताकि लोगों के लिए मुसीबत का सामान बने? पता नहीं किस क़ब्रिस्तान के अंडों को तोड़कर यह हरामी दौड़ उठे हैं। अरे पूछो तो लोगो, इस हरामी चूज़े ने मुझे मार डाला, मुझे ज़मीन पर गिरा भाग गया। ज़रूर मेरा हाथ पैर टूटा है। अरे तुम में से कोई आए और मुझे सहारा देकर उठाए। ख़ुदा करे तुम्हारी मौत की ख़बर सुनूँ। पचास रुपये का नोट कोट से निकाल दो किलो गोश्त ख़रीदती हो मगर कभी तुमने यह नेकी की है। एक कटोरा अपने पड़ोसी को प्यार से देती? ख़ुदा, तुम्हारी मौत की ख़बर तुम्हारी माँ को मिले। ख़ुदा, तुम्हारी मौत की ख़बर मुझ तक पहुँचे। पैदल चलना, जो मेरी बेटी पर सवारी गाँठ रहे हो और मुझसे उसको दूर रखा। रबाबे तू कहाँ है? देख तेरी माँ कैसी ज़लील हो रही है? ऐ हाज इस्माइल तुम कहाँ हो? एक मुँह था मेरा और हज़ार क़हक़हे थे। अब ज़रा देखो, किसी का रिश्तेदार यूँ ज़लील न हो। ओ बच्चे-ज़लील इंसान की औलाद, अगर आदमी कहने पर आए कि तुम्हारी आँखों पर भवें हैं... तुम्हें जो दिखना चाहिए वह कहाँ दिखता है...''

कुछ राहगीर दौड़कर उसकी तरफ़ लपके! एक जवान, जो काली दाढ़ी और

ऐनक लगाए था, नीचे झुका और कौकब सुल्तान का हाथ पकड़कर उन्हें उठाया और नमाज़ की चादर को ज़मीन से उठाकर उसके बर्फ़ के कणों को झाड़ा और उसके सर पर डाला। उसके साथ की ख़ूबसूरत बिना चादरवाली औरत ने बर्फ़ पर बिखरे गोश्त के टुकड़े को बर्फ़ से उठाकर अख़बार के टुकड़े में लपेटकर उनके हाथ में थमाया। जवान ने छतरी उठाई और उनके बग़ल में दबाई और कहा, ''मैं आपको छोड़ आता हूँ।''

ख़ूबसूरत चेहरे वाली औरत बोली, 'अगर आपको लगता है कि आपके जिस्म में कुछ टूटा है तो आपको हम अस्पताल ले चल सकते हैं?'

कौकब ख़ानम का कड़वा मुँह था। दिल भारी था। उसी हालत में वह औरत को देख हँस पड़ी। एकाएक उसे महसूस हुआ कि जैसे वह मर्द जवान उसका दामाद है जिसकी उसे आरज़ू थी। मगर वह ख़्वाहिश थी हक़ीक़त नहीं और जवान औरत उसे अपनी लड़की लगी। बाद में सोचा कि सारे शहर के लोग उसके ख़ानदान और मिलने-जुलने वाले हैं। इस ख़्याल के आते ही उनका दिल ख़ुश हो गया। सभी की तरफ़ नज़रें उठाकर सलाम किया, फिर एकदम से रोने लगीं और इस तरह आँसू बहा रही थीं कि जैसे हाज इस्माइल परसों ही ग़ायब हुआ हो।

❑❑❑